श्रीमद् अभयदेवसूरि ग्रन्थमालाका पुष्पक नं १

॥ श्री ॥

शुद्धदेव अनुभव विचार

कर्ता परमयोगी जैन धर्माचार्य मुनी श्री
१००८ श्रीमद् चिदानन्दजी महाराज

प्रकाशक—

श्रीमद् अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला
जैन श्वेताम्बर मित्रमंडल
कलकत्ता २१ कैनिंग स्ट्रीट

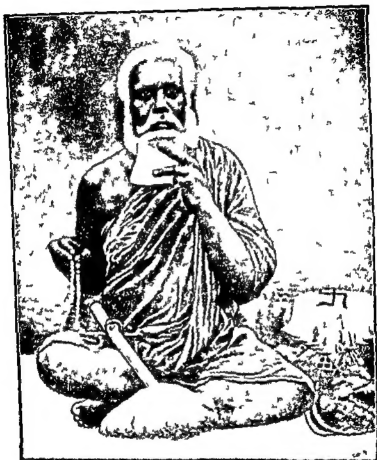
सहायक

श्रीयुत् बाबू शालमचन्दजी गोलछा
बेंगलोर निवासी

मूल्य आत्मविचार)

द्वितीय आवृत्ति
१ ००

वीरसम्वत् २४६७
विक्रम सम्वत् १९९८



जैन धर्माचार्य योगनिष्ठ

श्रीमद् स्वामी चिदानन्दजी महाराज।

स्वर्गारोहण सम्वत् १९४९ पौषकृष्णा ९ चन्द्रवार

वक्तव्य

जैन दर्शनमें हिंदी साहित्यकी वर्तमान समयमें जब भारत वर्षमें सर्वत्र हिन्दी भाषाकाप्रचार जोरोंसे हो रहा है तब श्वेताम्बर सम्प्रदायमें विद्याके अभावसे नहींकि बराबर तत्व विचारके अथवा इतिहास आदिके ग्रन्थ प्रकाश होते हैं, देखिये दिगम्बर सम्प्रदायमें हिन्दी धार्मिक ग्रन्थोंकी उन्नति किस उत्साहके तथा परिश्रमके साथ हो रही है इसका कारण दिगम्बर भाइयोंकी विद्या मै रुचि और धर्ममे प्रेम तथा द्रव्यका सदुपयोगही है। इस लिये श्वेताम्बर समुदाय वालोंको भी हिन्दीमें ऐतिहासिक, वैज्ञानिक तथा सात्विक ग्रन्थ प्रसिद्ध करनेमें उत्साहके साथ द्रव्यकी सहायता करके विद्याका प्रचार विशेष करनेपर दृष्टिदेना उचित है। देखिये गुजरातीमें जैन साहित्यकी वृद्धि किस उत्साहसे हो रही है और जन समुदायको लाभ मिल रहा है, परन्तु मारवाड, मेवाड़, पन्जाब, मालवा तथा पूरब आदि देशोंके लोगोंको गुजरातीका अभ्यास नहीं होनेसे इन ग्रन्थोंसे लाभ नहीं उठा सके, हिन्दीमें ग्रन्थ आगरा तथा लाहौर आदि कई स्थानोंसे निकलने शुरू हुए हैं, यह शुभ चिन्ह देखके हर्ष होता है।

कलकत्तेमें आचार्य महाराज श्री श्री १००८ श्री जिन चारित्रसूरजीके उपदेशसे यहाके धर्मानुरागी चन्द महाशयोंका ख्याल इस तरफ आकर्षित हुवा और इस कार्यमे सहायता देनेका उत्साह दिखाया इसके परिणाममें "श्रीमद् अभयदेव सूरिग्रन्थमाला"

निश्चातना स्थिर हुवा, जिसके फल स्वरूप एक ग्रन्थ 'नित्य स्मरण पाठमाला, बाबू मेरूदान जी कोठारीजी तरफसे प्रकाश हो गया है।

यह दूसरा पुष्प्क भी इसी शुभकार्यके फल स्वरूप श्रीमद् चिदानन्द जी महाराज कृत "शुद्धदेव अनुभव विचार" श्रीयुत बाबू लालम चन्द जी गोलछा श्री बगलोर निवासीने प्रकाश करनेमें सहायता देकर ग्रन्थमालामें वृद्धि करी इस लिये उक्त महाशयका हार्दिक धन्यवाद दिये बिना आगे नहीं बढ़ता।

बाबू लालम चन्दजीका कुछ परिचय यहां देना योग्य है आप श्री बिकानेरके निवासी हैं और बगलोरमें आपकी कोठी है लक्षाधिपती होकर निर्भिमान तथा धामक हैं आपकी धर्मके ऊपर पूर्ण श्रद्धा है और सार्धर्मिकसेवा, ज्ञानदान, आदिमें आप सदा उत्साहित रहते हैं, प्रकृतिके भद्र, सरलस्वभाव, तथा लोक सेवामें भी आपकी रुचि रहती है, यह ग्रन्थ आपके काका खुशाल चन्दजी तथा भ्राता पेमराज जीके स्मरणार्थ प्रभावना करके जैन धर्मके अनुरागी सज्जनोंका आत्म विचारका लाभ पहुचानेके वास्ते प्रकाश कराया है।

इस ग्रन्थकी उत्तमताके विषयमें तो इतनाही लिखना उपयुक्त है कि कर्ताने भव्य जीवोंके वास्ते आत्म विचारका समुद्रसे मथन करके एक छोटेसे रत्न पात्रमें अमृत संग्रह कर दिया हैं, ग्रन्थ स्वतन्त्र अनुभव ज्ञानसे रचा हुवा है सो पठन, मनन करनेसे वाचकोंको स्वतः अनुभव हो जायगा।

इस ग्रन्थके विषय तथा अनुभवके सम्बन्धमें श्री आचार्य महाराज प्रस्तावनामें लिखेंगे इस लिये यहां विशेष नहीं लिखा

इस ग्रन्थकी प्रथम आवृति विक्रम सम्वत १९६९ में बम्बईके हिन्दी जैन कार्यालयके सम्पादक कस्तूर चन्द जी गादीयने प्रकाश की थी परन्तु उसमें अशुद्धियें बहुत रह गई थीं तथा प्रथम आवृति शेष भी हो गई इस लिये यह दूसरी आवृति शुद्ध करवाके प्रकाश करी है।

चतुर्विसंघका दास—
कोठारी यमुना लाल।

भूमिका

सर्व जैन तत्वाभिलाषी आत्मार्थियोंको विदित हो कि यह "शुद्धदेव अनुभव विचार" ग्रन्थ अध्यात्मी मुनी श्रीचिदानन्दजीने विशेष आत्म विचार करने वालोंके लिये अपने अनुभव ज्ञानद्वारा रचकर भव्य जीवोंका बड़ा उपगार कीया है। इस ग्रन्थमें शुद्ध देवकी परीक्षा करायके उसके ऊपर ५७ बोल उतारके एक एक बोलमें ज्ञेय, हेय, उपादेय, उत्सर्ग और अपवाद पाच पाच बोल उतारे है। जिसमें आत्मा तथा परमात्माका ऐक्य करके इस सुगमतासे समझाया है कि पठन करनेवालेको जल्दी आत्माका बोध होकर अपने यथार्थ स्वरूपकी पहचान हो जाय और स्वसम्वेदन तथा भेद ज्ञानद्वारा अपने निज स्वरूपको यथार्थ समझ कर आत्मध्यानमें शीघ्र प्रवृती कर शके।

सतावान बोल यह है-व्यवहारसे देव किसको मानना चाहिये, २ निश्चयसे देवका स्वरुप क्या है, ३ द्रव्यसे देव किसको कहते है, ४ भावसे देव किसको कहते है, ५ सामान्य देव, ६ विशेष देव, ७ नामनिक्षेपसे देव, ८ स्थापनानिक्षेपसे, ९ द्रव्यनिक्षेप, १० भावनिक्षेप, ११ प्रत्यक्ष प्रमाण, १२ अनुमान प्रमाण, १३ उपमाप्रमाण, १४ आगमप्रमाण, १५ द्रव्य, १६ क्षेत्र, १७ काल, १८ भाव, १९ अनादिअनत, २० अनादिसान्त, २१ सादिशान्त, २२ सादिअनत, २३ नित्य, २४ अनित्य,

२५ एक, २६ अनेक, २७ सत्य, २८ असत्य, २९ वक्तव्य, ३० अवक्तव्य, ३१ भेद, ३२ अभेद, ३३ भव्य, ३४ अभव्य, ३५ नित्य, ३६ अनित्य, ३७ परमस्वभाव, ३८ कर्ता, ३९ कर्म, ४० करण, ४१ सम्प्रदान, ४२ अपादान, ४३ आधार, ४४ नय गमनय, ४५ संग्रहनय, ४६ ऋजुसूत्रनय, ४७ शब्दनय ४८ सम भिरूढ़नय, ४९ एवंभूतनय, ५० स्यात्अस्ति ५१ स्यात्नास्ति, ५२ स्यात्अस्तिस्यात्नास्ति, ५३ स्यात्अवक्तव्य, ५५ स्यात्अस्ति अवक्तव्य, ५६ स्यात्नास्ति अवक्तव्य, ५७ स्यात्अस्ति स्यात् नास्ति युगपद् अवक्तव्य ।

इस प्रकारसे ५७ रीतिसे भिन्न भिन्न करके देवका स्वरूप समझाया है सो वाचक वर्गको ग्रन्थ पढ़न करनेसे अनुभव होगा इस लिये प्रस्तावनामें विशेष विस्तारसे नहीं लिखा है ।

हमारा पाठक वर्गसे यही अनुरोध है कि इस ग्रन्थको विचार पूर्वक एकान्तमें बैठकर पठनकरनेका परिश्रम करेंगे तो आत्माका कल्यान होगा और सम्यक्त्व प्राप्तिमें बड़ी सहायता मिलेगी । और ग्रन्थ भी उक्त महात्माके रचे हुए हैं सो श्रीमद् अभयदेव सूरी ग्रन्थ मालामें क्रमसे प्रकाशित होंवेगे जिससे भव्य जीवोंका बड़ा उपकार होकर धर्ममें विशेष दृढ़ता होगी ।

लेखक भट्टारक श्रीजिनचारित्र सूरि वृहद्
गच्छ खरतर बड़ी गद्दी बीकानेर ।

श्रीमान् सेठ खुशालचन्द जी गोलेच्छेका

संक्षिप्त

जीवन वृत्तान्त ।

राजपूताना मारवाड़के प्रसिद्ध शहर बीकानेरमें जीवाजीवादि नवतत्व स्वरूप जानकार राज्य, सभा शृंगार कारक, दया दान धैर्य औदार्य आदि गुणालंकृत, देव गुरु भक्ति कारक केवली प्ररूपित शुद्ध धर्म आराधक, कचरावी गोलच्छा गोत्रीय ओश वंश प्रख्यात सेठ श्री मुन्नालाल जी नामके श्रावक हुये आपके परम शीलालंकार धारिणी श्रीमती सरू बाई नामसे स्त्री थी।

प्रबल पुण्यके योगसे आपके घरमें तीन पुत्र उत्पन्न भये। जिनोंके नाम-खुशालचन्दजी १ फतेचन्दजी २ पन्नालालजी ३ तीनोंमें आप चरित्रनायक प्रथम पुत्र थे और बाल्यावस्थासे ही बुद्धिमान विवेकी एवं चतुर होनेके कारण अल्प समयमेंही गणितकला आदि सीखकर होशियार हागये।

तदन्तर आप मयशूर राज्यान्तर्गत प्रसिद्ध शहर बंगलोरमें आपके दादाजी बींजराजजी साहिबके पास रहकर संपूर्ण व्यवहारिक विद्याका ज्ञान प्राप्त कीया, और यहां पर ही प्रथम दुकान खोलके न्याय पूर्वक द्रव्योपार्जन करना शुरू कीया। प्राय. युरोपियन् लोगोंसे लेन देन परिचय जयादा रहनेसे

और उनके साथ हमेशां बोलचालके मुआवरेसे आप इन्लिश भाषा बोलना समझना, लिखना, अच्छी तरह जानगये।

आपने अपनी बुद्धिमानीसे व्यापार करके अच्छा द्रव्य सपादन कीया।

मरू आतमें आपको व्यापार कला बतानेवाले। तथा व्यापार करनेकी प्रेरणा करनेवाले शेठ आपके बाबाजी श्री सींवराजजी गालेचछा थे।

आपने इनका व्यापार करनेके लिये रुपये २३०००) नगद दीये थे।

इस थोडी रकमसे आपने अच्छा काम चलाया और अपनी अकलमन्दीसे मृत्यु समय तक करीब ९ लाख रुपये जोड़ सके।

आप धर्म काय आदिमें प्राय द्रव्य भी बहुतायतसे करते रहते थे। तीर्थ यात्रा देवगुरु भक्तिमें हार्दिक प्रीति एव श्रद्धा रखत थे।

प्रतिवर्ष पर्युषणादि पर्व उत्ते भावसे बोली आदि बोलकर १४ स्वप्न या पालणा पोथा श्री कल्पसूत्रजीके पाने आदि लीया करते थे।

भद्र परिणामी होनेसे किसीके साथ विशेष इर्षा द्वेष आदि न रखते थे।

आपको सामायिक करनेका बहुत भाव था। पाच तिथी आदि लीलोत्री त्याग पूर्वक चउ विहार करते थे।

आपको प्रातःकाल जल्दी उठकर सामायिक, शिझाय ध्यान, शत्रुंजय रास, गौतम रास और बहुतसे छंद सत स्तोत्र स्मरणों के पाठ करनेका नियम था।

आपने अपने पुत्रोंको भी प्रतिक्रमण वगैरह सीखनेका बोध देकर उन्हें भी धर्मसे परिचित कीये।

तदनन्तर आपने दखिण सिकन्दराबादके पास वारकस था तर्मल गिरीमें और एक दुकान खोलकर युरोपियन और देशी लोगोंके साथ शराफी लेन देनका जोर शोरसे काम चलाया। आपका न्यात जात और पंच पचायतमें हमेशां उच्च दर्जा था और इसी प्रकार आप भी उचित स्थानपर मुनासिब द्रव्य व्यय करनेसे न चूकते थे। आपको अपने पूर्वजोंकी पुरानीही फेशन पसन्द थी।

यद्यपि आप इंगलिश भाषाके जाननेसे प्रत्येक अंगरेज बोल-चालम रूबावदार जरूर थे मगर नई फेशनके कोट पतलून वगैरह जो वस्त्र आपके बुजुर्गोमेंसे किसीने न पहिनाहो। ऐसे वस्त्रोंसे आप भी सदा नफरत रखते थे।

तपस्या उपवास आयंबिल एकाशण आदि आप करते रहते थे।

विशेष कर आपका रहना ऐसे स्थान परही रहा कि जहा जिन मन्दिर या साधु साध्वी व्याख्यान आदिका योग न मिलता हो।

बगलोरमें आप जब पहिले रहे तो वहा पर भी जिन मन्दिरका अभाव ही था।

जब आप तमेज गिरीजी दुकानपर रहे तब तो आजबका पर्व तिथियो सिकन्दराबाद या हैद्राबादके जिन मन्दिरोंमें आकर दर्शन, पूजा व्याख्यानका लाभ ले सकते थे। और वहां पर ॥ तीर्थराज श्रीकुल्पाकजी नजदीक होनेसे सालमें एक या दो बार यहांकी यात्राका भी लाभ लेते थे।

१९५३में बृहत्खरतर गच्छीय पूज्य जैनाचार्य १००८ श्रीजिन सिद्ध सूरीश्वरजी महाराज हैद्राबाद बेगमबाजार जैन मन्दिरमें चातुर्मास किया तब बराबर ४ मास वहां ही रहकर आपके व्याख्यान आदिका लाभ लीया था और सराहनीय भक्ति कीया था।

आपके पूर्वज खरतर आचार्य गच्छीय समुदायमें होनेसे आप भी स्वगच्छानुराग अच्छा रखते थे।

तदनन्तर आपने मद्रास परम कुडा स्थानपर और एक दुकान कीया और रामेश्वरके रास्ते हिन्डीयनम् स्थानमें और देवकोटीमें और दुकान कीया।

आपका व्यापार सब जगह। सराफी बैंकर (रेडी मनी बैंक) का था दूसरा कटक व्यापार आपको पसंद न था।

जब आपका निवास दिंडी धर्में होता था तब भी जिन मन्दिरका अभाव रहा। और जब आप परम कुडेमें रहते थे तब तो पर्यूषण आदि मुख्य दिवसोंमें सावकार पेटके मन्दिरमें आकर धर्मकृत्य करते थे।

आपको जहां तक योग मिला है प्रतिवर्ष पर्यूषणमें श्री कल्पसूत्रजी सुननेका नियम था।

आपको जीव दयामें बहुत कुछ लागणी थी। आपके पुत्र तो ५ हुये थे मगर उनमें से ३ सन्तान मोजूद रहे।

जिनोंके नाम १ छगनमल जी २ अमोलचन्द ३ दीपचन्द बड़े दोनों पुत्रोंके विवाहमें आपने अच्छा द्रव्य व्यय कीया था। अन्तमें अच्छा यश प्राप्त करके ६१ वर्षकी सर्वायु भोगकर १९७७के आषाढ़ वदि ६मीको मद्रास फर्म कुन्डा स्थानमें धर्म ध्यान पूर्वक पाप आलोयण आदि करके स्वर्गगामी हुये। ईश्वर आपकी आत्माको शान्ति प्रदान करें और सन्तानोंको धर्य बक्ष।

आपके अन्तकाल समय बड़े पुत्र छगनराजजीने रु २००००) धर्म खाते देनेका सकल्प कीया है।

और इस पुस्तकके प्रकाशित करानेके लिये शेठ पेमराज जी जो आपके भतीजे होते थे उनके वासते रु १५०) शेठ लालमचन्दजी गोल्छाने रु २००) एवं सर्व रकम रु ३५०) पुस्तक छपवानेमें खर्चका देना कहा था तदनुसार ये रकम शेठ श्री लालचन्दजीने शेठ खुशालचद जी तथा पेमराज जीके नाम स्मरणके लिये दी गई और पुस्तक छपवाके वितरण की गई।

यह सक्षेपसे कुशलचन्दजीका जीवन वृत्तांत विद्या विलास प० नेमिचन्द यतिने प्रसिद्ध भाषामें लिखा।

द विद्याविलास—

प० नेमिचद।

विषय-अनुक्रमणिका

—*—

ॐ ॥

अथ शुद्ध देव अनुभव विचार।

दोहा

शुद्ध देव अनुभव कहूं, शासनपति महाराज।
श्रुतदेवी गुरु सुमरतां सफल होत सब काज ॥१

१ प्रथम व्यवहारसे देवका स्वरूप कहते हैं—

जो १८ दूषण करके रहित और १२ गुण ३४ अतिशय ३५ वाणी करके युक्त हो उसको व्यवहारसे देव कहते हैं। बारह गुणोंमें चार तो मूल अतिशय और आठ महा प्रतिहार्य हैं। यह शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है इसलिये यहा विस्तारसे नहीं लिखे, और अन्तराय कर्मके नष्ट होनेसे जो पाच लब्धि उत्पन्न होती है सो कहते हैं। दान देनेमें जो अन्तराय है सो प्रथम दोष दानान्तराय है। दूसरा लाभान्त राय है। अर्थात् लाभ न होने पावे यह दूसरा दोष है। तीसरा भोगान्तराय अर्थात् भोग न करने पावे यह तीसरा दोष है। चौथा उपभोगान्तराय अर्थात् बारम्बार वस्तुको न भोग सके। पांचवा

वीर्यान्तराय अर्थात् पराक्रम (शक्ति-या बल) पूरा न हो, यह पाचवा दूषण है। यह पाचो बातें जिसमें न पाई जायें वह इन दूषणोंसे रहित है। क्योंकि यह पाचो दूषण तीर्थंकरोंम नहीं पाये जाते। देखो गृहस्थावस्थाम जैसा तीर्थंकर दान देते हैं वैसा दूसरा कोई मनुष्य दान नहीं दे सक्ता है। और फिर साधु (मुनि यति) होनेके बाद केवल ज्ञान, केवल दर्शन उपार्जन करके अनेक भव्य जीवोंको उपदेश अर्थात् आत्मस्वरूप बतलाते हैं यह आत्मस्वरूपका बतलाना ही उनका दान है, दूसरा लाभ भी उनको ऐसा है कि दूसरे चक्रवर्ती वासुदेव आदिको ऐसा लाभ न होगा और दूसरा जाकि ज्ञान, दर्शन, चारित्र अनादि कालक तिरोभाव (दबे हुए) थे सो कर्मोंके क्षय होनेसे आविर्भाव (प्रगट) हुए। सो फिर कभी तिरोभाव न होगा यह अक्षय लाभ हुआ। तीसरे भोगका सुनो कि जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, उत्पन्न हुए ये फिर कभी नष्ट न होंगे इस लिये ज्ञान, दर्शन, चरित्रकाही भोग हुआ। चौथा उपभोग कहते हैं कि जो वारम्वार अपनी आत्मामें रमण करना उससे कदापि अलग न होना उसका नाम उपभोग है। पाचवा वीर्यका अर्थ करते हैं कि कर्मोंका क्षय होनेसे पौद्गलिक वीर्य नष्ट हुआ। और आत्मवीर्य अर्थात् आत्माकी जो शक्ति प्रकट हुई वह शक्ति कैसी है कि जो कर्मसंयुक्त जीव हैं उन जीवोंमेंसे चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव आदि किसीमें भी वह शक्ति नहीं है। ऐसी उनमें अनंत शक्ति है। क्योंकि देखो वह इस शक्तिसे भूत भविष्यत् वर्त्तमान

कालके भाव और छ पदार्थोंके अनत गुण पर्यायरूप उत्पाद व्यय, ध्रुवताको एक समयमे देखते हैं। वही वीर्य अर्थात् अनत शक्ति है। सो इन पाच दूषणोके जानेसे प्रभुमे गुण हो जाते हैं और जिसमें पाच वातें पूर्ण नहीं उसको दूषण सहित कहते हैं। छठा हास्य परमेश्वरमें नहीं क्योंकि हास्य उसीको आवेगा जो अपूर्व बातको देखेगा सो अर्हन्त देवके ज्ञानमें कोई भी वस्तु अपूर्व नहीं है कि जिससे हास्य आवे। सातवा रति अर्थात प्रीति भी किसी पदार्थमे नहीं। आठवा अरति अर्थात् जो वस्तु अप्राप्य हो उसके प्राप्त होनेका यत्न करना उसका अरति कहते हैं, सो परमेश्वरको सर्व वस्तु प्राप्त है। अत उनमे अरति भी नहीं है। नववा भय है सो परमेश्वरको किसीका भय नहीं। दशवा जुगुप्सा अर्थात् किसी मलिन (खराब) वस्तुसे ग्लानि करना सोभी भगवानके नहीं। ग्यारहवा शोक अर्थात् चिन्ता करना सोभी उनमें नहीं। बारहवा काम अर्थात् स्त्री, पुरुष, नपुसक इन तीनो वेदोंका विकार सोभी उनमे नहीं। तेरहवा मिथ्यात्व, चौदहवा अज्ञान, पन्द्रहवा निद्रा, सोलहवा अविरति, सत्रहवा राग, अठारहवा द्वेष यह आठ दूषण भी प्रभुमें है नहीं। इन अठारह दूषणो करके जो रहित हो वह व्यवहारसे देव है। परन्तु इन अठारह दूषणोंमेसे एक भी दूषण जिसमे हो वह व्यवहारसे भी देव नहीं। इसी तरहसे ३४ अतिशय ३५ वाणीका विस्तार भी शास्त्रोंमे कहा है। इसलिये मैंने नहीं कहा क्योंकि ये बातें सर्व

जेनियोंमें प्रसिद्ध हैं, इस रीतिसे जिसका ऐसा स्वरूप हो उसका व्यवहारसे देव कहना चाहिये।

अब इस व्यावहारिक देवमें भव्यजीवोंको ज्ञेय, हेय उपादेय, उत्सर्ग और अपवाद उतारकर दिखाते हैं। प्रथम ज्ञेय क्या है? ज्ञेय नाम वस्तु (पदार्थ) जाननेका है। इस जगह देव और कुदेवका स्वरुप जाननेके योग्य है। इन दोनोंमेंसे कुदेवको हेय अर्थात् छोड़नेके योग्य जानकर छोड़े (त्याग करे) इस जगह यह हेय हुआ, और देवको उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य जान कर ग्रहण करे यह उपादेय हुआ। उत्सर्ग इस जगह क्या वस्तु है सो कहते हैं कि अर्हन्तके ज्ञान, दर्शन, चारित्र अव्याबाधादिक निज गुणोंको निमित्तकारण जानकर विचारना सो उत्सर्ग मार्ग है। अब इस जगह अपवादमार्ग कौनसा है सो दिखाते हैं कि जब देवके निजगुणोंमें चित्त न ठहरे अथवा देवके निजगुण विचारनेकी समझ न हो तो बाह्य गुणरूप जो ३४ अतिशय, ३५ वाणी, आठ महा प्रातिहार्य आदि हैं, सो विचारे अथवा हे प्रभु तूं तारनेवाला है मैं तेरा सेवक हूं हे नाथ तेरे सिवाय और कोई मुझे तारनेवाला नहीं है, इत्यादि अनेक निमित्त कारण देवकोही मुख्य मानकर स्तुति करे सो अपवाद मार्ग है।

अब दूसरी रीतिसे भी इन्हीं पांच बातोंको उतारते हैं कि जिस भव्य जीवने शुद्ध गुरुकी चरण सेवासे आत्मस्वरूपको जाना है उसके वास्ते व्यवहारसे देवके स्वरुपमें इन्हीं पांच ... रीतिसे उतारकर दिखाते हैं, कि ज्ञेयसे तो

देवका स्वरुप जानना। जो रीति हम ऊपर देवके स्वरूपमें लिख आये हैं वह हेय है। और देवमें हेय क्या वस्तु है सो दिखलाते हैं कि जिस समयमें भव्यजीव देवके अन्तरंग (निज) गुणोंका स्मरण करने लगे, उस समय बाह्य जो देवताकृत अतिशय और महाप्रातिहार्यादि हैं उनका हेय अर्थात् छोड़नेके योग्य जाने और भगवानके ज्ञान दर्शनादि जो निजगुण हैं वे 'उपादेय' अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य हैं। तथा उत्सर्गमार्गसे भगवतके निजगुणोंको अपने आत्मगुणोंमें अभेदवृत्तिसे विचारे। जबतक चित्तकी वृत्ति भगवतके गुणोंमें और आत्मगुणोंमें अभेद रहे तबतक उत्सर्गमार्ग है, और जब उस अभेद वृत्तिमें चित्त स्थिर न रहे तब उस वृत्तिको सहायता देनेकवास्ते अपवादमार्गसे प्रभुके निजगुणोंको विचारे सो अपवादमार्ग है। इस रीतिसे व्यवहारसे देवका स्वरूप कहा।

२ अब निश्चयसे देवका स्वरूप कहते हैं।

निश्चय अर्थात् शुद्ध व्यवहारसे देव अपनी ही आत्मा है। क्योंकि देखो सग्रहनयकी सत्ता देखता हुआ जो सत्ता स्वरूप ज्ञान, दर्शन, चरित्र वीर्यमयी शक्तिभाव अर्थात् तिरोभाव (दवाहुवा)में सिद्धके समान तरण तारण अपनी आत्माही है। इसलिये शुद्ध देव अपनीही आत्मा है और पंचपरमेष्टि तो निमित्त कारण है। इसीलिये श्रीहेमचन्द्राचार्य जीने वीतराग स्तोत्रमें पंचपरमेष्टिसे आत्माको अधिक कहा है, सो श्लोक दिखाते हैं कि—

य परात्मा परं ज्योति परमं परमेष्ठिनाम् ।
आदित्य वर्णं तमसः परस्ता दामनन्तियम् ॥१॥
सर्वेयेनोद मूल्यत समूला क्लेश पादपा ।
मूर्धायस्मैनमस्यन्ति सुरासुरनरेश्वरा ॥२॥

अर्थ, जो परमात्मा सर्व संसारी जीवोंसे श्रेष्ठ स्वरूपवाला, केवल ज्ञानमय वह पंचपरमेष्ठिमें प्रधान (मुख्य) है व जिसको सूर्यके समान उद्योत करनेवाले पंडितजन मानते हैं ॥ १ ॥

जिसने राग द्वेषादिक क्लेशकारी वृक्षोंको जड़मे उखाड़ डाले हैं और जिसको सुरपति, असुरपति, नरपतियोंका समूह मूर्धायामे मस्तकसे नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥

अब इस निश्चय अर्थात् शुद्ध व्यवहारमें भी पांच बोल उतारकर दिखाते हैं। इस निश्चय अर्थात् शुद्ध व्यवहारमें ज्ञेय क्या वस्तु है कि आत्माके स्वरूपको पहिचाने। उस आत्मस्वरूपमही गुरुबुद्धि माने। क्योंकि शास्त्रमें ऐसा कहा है कि (तत्व गृहाति इति गुरु) अर्थात् तत्वका जो ग्रहण करे उसीका नाम गुरु है। तो यह आत्माही तत्वको ग्रहण करनेवाला है, नतु कोई अन्यके ग्रहणसे कार्य सिद्धि। इसलिये आत्माही गुरु ठहरा। और धर्मको जाननेवाला भी आत्माही है। क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि (वस्तु साहावो धम्मो) अर्थात् जो वस्तुका स्वभाव हो वही उसका धर्म है। तो आत्माका स्वभाव ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यमयी है। इसलिये आत्माका जो स्वभाव सोही धर्म ठहरा। इस रीतिसे जानने योग्य आत्माको जानना उसीका

नाम ज्ञेय है। और प्रथम जो निमित्त कारण देवका स्वरूप ऊपर लिख आये उसका स्वरूप भी जाने, सो इस जगह जो कि निमित्त कारण अवलम्बन प्रथम लिख आये हैं उसको हेय जान कर छोड़े, और निरावलम्बन होकर अपनी आत्माको ग्रहण करता हुआ आत्मस्वरूपको ही विचारे इसका नाम उपादेय है। अब उत्सर्गमार्गसे जो स्वरूप ऊपर लिखा है उसीसे निर्विकल्प एकत्वसे जो विचार है, वो उत्सर्गमार्ग है। उस निर्विकल्पमे जब चित्तकी वृत्ति न ठहरे तो अपवादमार्ग अंगीकार करे। तब सविकल्प प्रथक्त्वसपरिविचार अर्थात् विकल्प सहित आत्मध्यान करे उसका नाम अपवाद मार्ग । अब इस जगह जिज्ञासुको समझानेके वास्ते सविकल्प और निर्विकल्पका स्वरूप दिखानेके लिये दृष्टान्त कहकर दार्ष्टान्त दिखलाते हैं कि सविकल्प उसको कहते हैं जिस वस्तुका विचार करे उसी वस्तुके अवयवोंका जुदा जुदा स्वरूप विचारे अन्यका नहीं। इसपर दृष्टान्त दिखाते हैं कि जैसे गौका स्वरूप विचारने लगे तब गौके अवयवोंको स्मरण करे किस रीतिसे कि गौके सींग होते हैं, गौके पूंछ होती है, गौके एक पगमे दो खुर होते हैं, और गौका शास्ना अर्थात् गलेका चमड़ा लटकता रहता है इत्यादि इस रीतिसे सर्व अवयवोंको विचारनेका नाम गौका सविकल्प विचार अर्थात् ध्यान है। और निर्विकल्प उसको कहते हैं कि गौके अवयवोंको जुदे जुदे न विचारे केवल ऐसाही विचारे कि गौ है इसको निर्विकल्प ध्यान कहते हैं। यह तो दृष्टान्त हुआ अब दार्ष्टान्त

जुदा कि अपनी आत्माका अवयवों सहित ध्यान करे कि मेरम अनत ज्ञान है, अनत दर्शन है, अनत चारित्र है,, मे अनत वीर्य सयुक्त हू, मे अजर हू, अविनाशी हू। इत्यादि अनेक गुणोंको जुदे जुदे अपने आत्माकेही अवयवोंका जो विचार करना उसका नाम सविकल्प ध्यान है, और जब इन अवयवोंका विचार छोड़कर सर्व अवयवोंसे सयुक्त केवल आत्माका ही एक रूप करके जो विचार अर्थात् एकाग्रम (लय) लीन हो जाना उसका नाम निर्विकल्प है। इस रीतिसे सविकल्प और निर्विकल्प ध्यानका दृष्टांत और दार्ष्टांत कहा और निश्चयसे देवका स्वरूप दिखलाया।

३ अब तीसरा द्रव्य देवका स्वरूप कहते हैं।

जिस समय तीसरे भवमे पुण्यानुबन्धि पुण्यके उदयसे तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया अथवा देवलोक वा नारकीमे जो तीर्थंकरका जीव है सो नयगमनयसे आगामी अपेक्षा लेकर द्रव्यदेव है। ऊपर लिखे सबको जानना सो तो ज्ञेय है, पुण्यानुबन्धि पुण्य इस जगह हेय है। और नयगमनयकी अपेक्षासे तीर्थंकरनाम कर्म बाधना उपादेय है। उत्सर्गसे तो तीसरे भवके स्वरूपको छोड़कर देवलोक वा नारकीमे गये उस समय नयगम सग्रह नयकी सत्तासे देवपना है, और अपवादमे पुण्यानुबन्धि पुण्य वा तीसरेभवमे तीर्थकरनाम कर्म बाधा यह [illegible] भी अपवाद है।

अब दूसरी रीतिसे भी इसी स्वरूपको दिखलाते हैं, कि ऊपर लिखे मूजब सहित तीर्थंकरनाम कर्म हेतु जिससे करके बंध किया सो तो सर्वज्ञेय है। इसमें उपादेय ऐसे हैं कि यह तीर्थंकर होंगे और अनेक भव्य जीवोंको तारेंगे। इस गुणको अंगीकार करे, अथवा अपनी आत्माको कहे कि तू भी ऐसा कर ऐसा विचारना भी उपादेय है। शेष पुण्यबन्धनादि सर्व हेय जानना। और उत्सर्गमें उत्तम उद्यम करना और अपवादसें देवको विचारना कि इसने कैसा उत्तम तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया है इनसे अनेक जीव तिरेंगे यह अपवाद है इस रीतिसे द्रव्य देवका स्वरूप कहा।

४ अब चौथा भाव देवका स्वरूप कहते हैं।

जब देवलोक वा नारकीसे आकर माताके गर्भमें उत्पन्न हुए और तीन ज्ञान करके सहित तथा तीर्थंकर नामकर्मके प्रभावसे माताने १४ स्वप्न देखे, जिसके बाद इन्द्रने अवधि ज्ञानसे माताके गर्भमें स्थित तीर्थंकरको देखकर भक्तिसे प्रफुल्लित होकर विधि सहित नमोत्थूणं आदि स्तुति करी, इस जगह पूजा अतिशय (अर्ह) प्रकट हुआ इस शब्दकी अपेक्षा लेकर भाव देव कहा।

अब भावदेवपर पांच बोल दिखाते हैं, ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है, उपादेय इस जगह इस रीतिसे है कि पूजा अतिशय और ज्ञान आदि उपादेय हैं, उत्सर्गसे तो "उक्त" पूजा अतिशय और ज्ञानादि गुणोंको ग्रहण करे, और अपवाद से स्वामादिको विचारे।

अब दूसरी रीतिसे ऊपर लिखे स्वरूपको निमित्त कारण और अपनी आत्माको उपादान कारण जाने सो तो ज्ञेय है। निमित्तकी अपेक्षा कायम मुख्य है। परन्तु उपादानकी अपेक्षासे हेय है, इसलिये निमित्त हेय हुआ, उपादानसे उद्यम करना कि मैं भी देव हू ऐसा विचार सो उपादेय हुआ। उत्सगसे अपनेमे विचार करे कि उद्यम करु तो मै भी अपना देवपना प्रकट करु, और अपवादसे निमित्त देवके गुणानि विचारना इस रीतिसे भावदेवका स्वरुप विचारना।

५ अब पाचवा सामान्य देवका स्वरुप कहते हैं।

(णमो अरि हताण) अथवा अरिहत ऐसा नाम लेनेसे सर्व देव सामान्य रीतिसे शामिल होगये। क्योंकि देखो 'णमो अरि हताण, कहनेसे तो सब देवोंको नमस्कार हुआ, और जिसने चारघाति कर्मक्षय किये और केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न किये अथवा जो तीर्थंकर आदि हैं सो सब सामान्य पदसे इस अर्हतपदमे आगये। इसलिये सामान्य देव अर्हत हैं, अथवा सर्व तीर्थंकर या सामान्य केवलीका जो स्वरुप कहा है उसमे किसीके भी कहनेमे भेद नहीं, अथवा अनत ज्ञान, अनत दर्शन, अनत चारित्र, अनत वीर्य, यह सबका सामान्य होनेसे सामान्य देव कहते हैं।

अब इसमें पाच बोल उतार करके दिखलाते हैं। जानने योग्य ऊपर लिखे स्वरुपको जानना सो तो ज्ञेय है और एकरुप कथन

और ज्ञानादि गुणोंको ग्रहण करना वा विचारना सो उपादेय है, बाकी सर्व हेय है, उत्सर्गसे उनके कथनको विचार कर आज्ञाको ग्रहण करे और अपवादसे कथन वा ज्ञानादि गुणोंको केवल स्मरण करे। इस रीतिसे सामान्य देवका स्वरूप कहा।

६ अब छटा विशेष देवका स्वरूप कहते हैं।

जो तीर्थंकर होते उनके गणधर आदिक साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका जबतक रहे अर्थात् दूसरा तीर्थंकर उत्पन्न हो तबतक उन्हींकी विशेषता मानते हैं। क्योंकि वर्तमान तीर्थंकर महाराज निकट उपकारी हैं। जैसे वर्तमान कालमें श्रीवर्धमान स्वामी (महावीर) का आश्रय लेकरके जो कथन करते हैं। दूसरे तीर्थंकरोंका नाम कथन विषयम नहीं लेते। इसलिये वर्तमान कालमें विशेषता श्रीमहावीर स्वामीकी है। यह विशेष देवका स्वरूप हुआ।

अब इसम पाच बोल उतारकर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है, और वर्तमान शासनपतिकाही ग्रहण सो उपादेय है। बाकी सर्व हेय हैं। उत्सर्गमें तो वर्तमान तीर्थंकरकी आज्ञा सहित उद्यम करना, और अपवादसे वर्तमान शासन नायककी आज्ञाको मानना सो अपवाद है।

अब दूसरी रीति दिखाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको निमित्त तथा उद्यम करनेरूप क्रिया आदि सर्वको जानना सो ज्ञेय है, और वर्तमान देवकी आज्ञा सहित उनकों निमित्त कारण

जानता हुआ अपनी आत्माका उपादान कारण जानकर उद्यम करना सो उपादेय है। बाकी निमित्तादि सब हेय हैं। और उत्सगसे तो भाशा सहित उद्यम आदि क्रियासे गुणको प्रकट करना तथा अपवादसे केवल विचार करना, और गुण प्रकट न होना इस रीतिसे अपवाद हुआ। इन रीतिसे विशेष देवका स्वरूप दिखलाया।

अब चार निक्षेपसे देवका स्वरूप दिखलाते हैं :—

७ प्रथम नाम निक्षेपा कहते हैं।

जैसे अहन्त ऐसा नाम लेनेसे परमेश्वरका बोध (ज्ञान) होता है, अथवा किसीका नाम अहन्त हो, सो देव है।

अब इसमें पाच बोल उतारते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपका जानना सो तो हेय है। और 'अहन्त' इन अक्षरोंसे परमेश्वरका बोध होना सो अर्हंतरूप भक्षर उपादेय है। और अर्हंत किसीका नाम सो हेय है। उत्सगसे तो अर्हंत परमेश्वरका स्वरूप जानकर आत्मामे बोध करना अथवा परमेश्वररूप जानकर उसका स्मरण करना, और अपवादसे 'अहन्त' इन अक्षरोंका उच्चारण सो करना परन्तु स्वरूपका न जानना।

अब दूसरी रीतिसे स्वरुप कहते हैं कि प्रथम तो 'अहन्त' शब्दके अक्षरोंकी व्युत्पत्ति सहित अर्थको जाने कि अरि जो वैरी तिसको जो हने सो 'अहन्त' अर्थात् कर्मरूप शत्रुओंको हनने वाला परमेश्वर होता है। उस परमेश्वरको निमित्त कारण

मानकर कहे कि मे भी अपने कर्मोंको हनू तो अरिहंत हो जाऊ इत्यादिक गुणोंको जानना सो तो ज्ञेय है, और अपनी आत्माको उपादान समझकर स्मरण करना सो उपादेय है, बाकी सब हेय है। उत्सर्ग से तो अपनी आत्माको अरिहन्त जानकर और दूसरे अरिहन्त शब्दको निमित्त कारण जान दोनोंका एकरूप जानकर स्मरण करना और अपवादसे निमित्त अरिहन्त शब्दको ही अपना तरण तारण जानकर स्मरण करना, इस रीतिसे नाम निक्षेप कहा।

८ अब स्थापना निक्षेपसे देवका स्वरूप कहते हैं।

स्थापनाके दो भेद हैं। १ अकृत्रिम, २ कृत्रिम, सो अकृत्रिम तो किसीकी बनाई हुई नहीं अर्थात् शाश्वति जिन प्रतिमा है, सो यह प्रतिमा अनादि नित्य पर्याय है। यह जिन प्रतिमा देवलोक और नन्दीश्वरद्वीप मेरु आदि पर्वतोंमे जो जिन प्रतिमायें हैं सो शाश्वति अकृत्रिम अर्थात् किसीकी बनाई हुई नहीं है। और दूसरी कृत्रिमके भी दो भेद है। पहिला असद्भूत, और दूसरा सद्भूत। सो असद्भूत तो उसे कहते हैं कि जिसमे किसी तरहका आकार न हो और किसी वस्तुकी स्थापना कर लेना। जैसे चदन आर्य आदिककी स्थापना पचपरमेष्ठिकी होती है। और उसके सामने अपनी सर्व क्रियादिक करते हैं। और सद्भूत उसको कहते हैं कि जैसा भगवानके शरीरका आकार चिन्ह आदि था उसी आकारके समान चित्र अथवा मणिआदिमें

ज्योंका त्यों आकार या चित्र बनाना और उस आकारमें कोई तरहकी कसर न हो वैसी ही बनाकर कारण मन्दिरोंमें जो मूर्ति स्थापन की जाती है सो उन मूर्तियोंके देखनेसे साक्षात् भगवान्‌की प्रतीति होती है। इसीका नाम सद्भूत स्थापना है। इसी लिये शास्त्रोंमें (जिन प्रतिमा जिन सारखी कही सूत्र मझार) यह वचन कहा है। सो इसके पूजनकी विधि तो स्याद्वादानुभव रत्नाकरमें चतुर्थ प्रश्नके उत्तरमें एकान्त निर्जरा सिद्ध कर चुके हैं। और उसी ग्रन्थके तीसरे प्रश्नके उत्तरमें ढूंढियोंके खण्डनमें प्रतिमा सिद्ध कर चुके हैं। और मूर्तिका मानना दूसरे प्रश्नके उत्तरमें दयानन्दमत खण्डनमें उसी ग्रन्थमें कर चुके हैं। इसलिये यहां कुछ चर्चा न लिखी। इस जगह तो केवल जिज्ञासुके वास्ते हेय ज्ञेय, उपादेय, उत्सर्ग और अपवाद ही दिखलाना है सो उसीको दिखलाया है।

अब स्थापनामें पांच बोल उतारकर दिखलाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है। और मूर्तिका तद्रूप परमेश्वर जानना सो उपादेय है। और चित्र या मणि आदि बुद्धिका छोड़ना सो हेय है। उत्सर्गसे तो भगवद्रूप जान कर उनकी पूजनादि कृत्य आशातना टालके बहुमान सहित करना और अपवादसे पूजनादि न हो सके तो भगवत आज्ञा सहित स्तुति आदि करना।

अब दूसरी रीतिसे भी इसी स्वरूपको दिखाते हैं, कि ऊपर लिखी सर्व बातोंको और शान्तिरूप प्रभु मेरी शान्तिरूप कार्यका

पुष्ट निमित्त कारण है। और उपादान मे स्वय हु। इत्यादि-को जानना सो ज्ञेय है, और प्रभुकी शान्तरूप छविको देखकर अपना शान्तस्वरूप करना सो उपादेय है। बाकी हेय है। और उत्सर्गसे तो प्रभुका शान्तरूप देखकर आप भी तद्रूप शान्त हो जाना, और अपवादसे प्रभुको शान्तिरूप देखना अथवा शान्त गुणोंका स्मरण करना, इस रीतिसे स्थापना निक्षेपका स्वरूप कहा।

३ अब द्रव्य निक्षेपसे देवका स्वरूप कहते हैं।

द्रव्य देवके दो भेद हैं, एकतो आगम करके दूसरा नोआगम करके। सो आगमसे तो देवका स्वरूप जाने परन्तु उपयोग न हो। यदुक्त (अणउवयोगो दव्वं) ऐसा अनुयोगद्वार सूत्रमें कहा है, कि द्रव्यसे देवका स्वरूप तो सर्व जाने परन्तु उपयोग न हो उसको आगम करके द्रव्यनिक्षेपा कहते हैं। और नोआगमके तीन भेद है। पहला (ज्ञ) शरीर, दूसरा भव्य शरीर और तीसरा (तद्व्यतिरिक्त) शरीर। सो प्रथम(ज्ञ) शरीरका स्वरूप दिखाते हैं, कि जैसे श्री महावीर तीर्थंकरका निर्वाण अर्थात् मोक्ष हुआ उस शरीरका अबतक अग्निसंस्कार न हुआ और वह शरीर जितनी देरतक विद्यमान रहा उस शरीरको (ज्ञ) शरीर द्रव्यनिक्षेपा कहते हैं। अथवा इसको कोई इस रीतिसे भी उतारते हैं कि जो कोई भव्यजीव देवका स्वरूप भाव सहित अर्थात् उपयोग सहित जानता हो और उस भव्यजीवका आत्मा तो परलोक

चला गया और शरीर रहा उस शरीरको भी ऐसा कहेंगे कि देवका यथावत् भावसे स्वरूप जाननेवालेका यह शरीर है। इसको भी (ज्ञ) शरीर द्रव्यनिक्षेपा कहते हैं। और जब तीर्थंकर महाराज माताके पेटमें जन्म लेकर बाल्यावस्थामें रहते हैं उस शरीरको (भव्य शरीर) द्रव्यनिक्षेपा कहते हैं, अथवा किसी भव्यजीवको बाल्यावस्थामें किसी आचार्यने ज्ञानमें देखा कि यह बालक कुछ दिनके बाद भाव अर्थात् उपयोग सहित देवका स्वरूप जाननेवाला होगा इसलिये उस बालकको भी भव्य शरीर द्रव्यनिक्षेपा कहेंगे। तीसरा तद्व्यतिरिक्त शरीर द्रव्य निक्षेप है सो इसके अनेक भेद हैं। सो इसको विस्तारसे स्वरूप दिखलावें तो ग्रन्थ बढ़ जानेका भय है। परन्तु जिज्ञासुको समझानेके वास्ते एक भेद दिखलाते हैं कि जब तीर्थंकर महाराज गृहस्थपनेको छोड़के दीक्षा लेकर विचरते हैं और केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं हो तबतक उनको तद्व्यतिरिक्त शरीर द्रव्यनिक्षेपामें कहेंगे। अथवा केवल ज्ञान उत्पन्न हुएके पीछे भी देशना विना देवछन्देमें, अर्थात् समोसरणके विना बैठे हुए, अथवा देवताओंके साथ सुवर्ण कमलोंके ऊपर मार्गमें चलते हुओंको भी तद्व्यतिरिक्त शरीर द्रव्यनिक्षेपा कहेंगे यह द्रव्यनिक्षेपाका स्वरूप कहा।

अब इसके ऊपर पांच बोल उतारकर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको यथावत् जानना सो तो ज्ञेय है, और ज्ञशरीर अथवा भव्य शरीरको हेय जानना, और तद्व्यतिरिक्त शरीर अर्थात्

विचरनेवाले तीर्थंकरको अथवा देशना बिना प्रभुको अंगीकार करना सो उपादेय है, और उत्सर्गमें तो भगवानकी आहारादिसे भक्ति, अथवा उपयोग विना प्रभुकी वाणीका सुनना, और अपवादसे प्रभुके दर्शनकी इच्छा करना परन्तु कर न शके, इस रीतिसे द्रव्य निक्षेपासे देवके स्वरूप पर पाच बोल उतार कर दिखलाये।

अब यहा कोई ऐसी शंका करे कि तुमने द्रव्यदेवके आगम और नोआगममें दो भेद कहे तिसमें नोआगमके तीन भेदोंमें पाच बोल उतारे और आगमपर नहीं उतारे इसका कारण क्या?

इस शंकाका समाधान ऐसा है कि भो देवानुप्रिय—यह पाच बोल तो जितने भेद हमने कहे हैं उन भेदोंमें से जुदे जुदे (एक एक भेद पर न्यारे न्यारे) उतर सके हैं, परन्तु जुदे जुदे भेदों पर उतारनेमें सूक्ष्म रीति है, सो उसको समजना जिज्ञासुको कठिन होता है, इसलिये हमने जुदे जुदे भेदोंपर नहीं उतारे, क्योंकि द्रव्यानुयोगमें रमण करने वाले गुरु कोई विरले हैं, और इसमें रमण करने वाले गुरुके विना पाचकहानी अर्थात् पुस्तक वाचकर लोगोंको रिझाने वाले, अथवा गीतार्थ नाम धरानेवाले गुरुकुल वास विना और द्रव्यानुयोगके रमणताके विना नहीं समझाय सके हैं, किन्तु वे लोग निश्चय को बताय कर उलटा भ्रमजाल में गेर कर जो जिज्ञासु थोड़े बहुत इस विचारके करने वाले हैं उन जिज्ञासुओंको इस विचारसे डिगाय देते हैं, इस हेतुसे हमने जुदे जुदे बोल उतार कर न

दिखाये, परन्तु इस रीतिमें आगमसे द्रव्य निक्षेपेको एकत्र करके पाच बोल उतार कर दिखाते हैं।

आगम और नोआगम दोनोंका स्वरूप जानना सो ज्ञेय है, आगमम कही व्यवस्था द्रव्य देवकी, अथवा नोआगममें तद्व्यतिरिक्त द्रव्य देवको निमित्त कारण समझ कर अपनेमें द्रव्य उपादान जानकर, द्रव्यउद्यम करनेकी इच्छा सो उपादेय है बाकी सर्व हेय है, और उत्सर्ग से तो निमित द्रव्य देवको और अपने उपादान द्रव्य देवको अपना उपकारी जानके उनका ही द्रव्य स्मरण उपयोग बिना उद्यम करना। और उननिमित्त द्रव्यदेवका ही उपयोग रहित स्मरण करना सो अपवाद है।

१० भाव निक्षेपासे देवका स्वरूप कहते हैं।

जिस समय श्रीतीर्थंकर महाराज समोसरणमें बिराजमान होकर चतुर्विध संघ अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, अथवा १२ पर्षदाके सामने भव्य जीवोंका उपदेश देते हैं, उस समय देवका भाव निक्षेपा कहाता है, अथवा कोई भव्य जीव भाव देवका यथावत् स्वरूप जानकर उनको निमित्त कारण अंगीकार करके अपनेको उपादान जानकर अपने गुण प्रगट करनेके वास्ते भाव देव मानता हुआ अभेदपने अंगीकार करे, इस अपेक्षासे इसको भी भाव निक्षेपाने देव कहते हैं।

अब इसमें भी पांच बोल उतार कर दिखाते हैं कि, ऊपर लिखे स्वरूपको यथावत् उपयोग सहित जानना सोतो ज्ञेय है

और उसभाव देवकी वाणीको श्रोत्रइंद्रि द्वारा सुनकर उसके रहस्यको ग्रहण करना सो उपादेय है, और बाकी सर्व हेय है। और जब उस रहस्यको ग्रहण किया तब उपयोग सहित उद्यमसे अपने भावको प्रकट करना सो उत्सर्ग है, और जो व्यवस्था उत्सर्गमे कही है उसकोद्रव्य से करना अर्थात् उपयोग रहित करना सो अपवाद है। इस रीतिसे भाव देवमे पाच बोल दिखाए और चारो निक्षेपोका स्वरूप दिखाया।

अब चारो प्रमाणोसे देवका स्वरूप कहते हैं।

११ प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाणसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जिस कालमे इस भरत क्षेत्रमे केवल ज्ञान संयुक्त तीर्थंकर महाराज विचरते थे उससमय जो लोग देखते थे, उनदेखने वालोंको वे प्रत्यक्ष देव थे, अथवा वर्तमानकालमे श्रीमहाविदेह क्षेत्रमें केवल ज्ञान संयुक्त तीर्थंकर महाराज उपदेश देते विचरते हैं सो वे तीर्थंकर महाराज महाविदेह क्षेत्रवाले मनुष्योंको प्रत्यक्ष देव है, अथवा उनप्रत्यक्ष देवोको देखकर जैसे उनके आकार थे वैसे ही चित्र अथवा मूर्ति यथावत् बनाई है इससे यहमूर्ति भी प्रत्यक्ष देव है, इसी लिये शास्त्रोंमें जिनप्रतिमाको जिनके समान कहा है यह प्रत्यक्ष प्रमाणसे देवका स्वरूप कहा।

१२ अनुमान प्रमाणसे देवका स्वरूप कहते है।

प्रथम अनुमानकी रीति दिखाते हैं, कि लिंग देखनेसे लिंगीका ज्ञानहोता है, जैसे धूवेंको देखकर अग्निका अनुमान होता है कि—

इस जगह धूवा है तो अग्नि अवश्यमेव होगी, इसीरीतिसे निर्दोष वचन सुननेसे उत्तम पुरुषका अनुमान होता है कि यह पुरुष प्रमाणिक है, इसलिये इसजगह भी अनुमान सिद्ध करते हैं कि पक्षपात रहित अमृत रुपी स्याद्वाद अनेकांत करके संसारका स्वरुप और मोक्षका मार्ग बतलाया है, इन वचनों करके निश्चय होता है कि कोई सर्वज्ञ देव हैं। अथवा उनका चित्र वा मूर्ति देखनेसे अनुमान करते हैं कि जैसे यह मूर्ति शांत ध्यानारूढ़ पद्मासन लगाये हु और अविकारी हैं इसके भी देखनेसे बुद्धि मान भव्य जीव अनुमान करते हैं कि जिनकी यह मूर्ति है उस का शरीर भी शांतरूप ध्यानारूढ़ पद्मासन लगाये अविकारी होगा इसलिये अनुमानसे देव सिद्ध हो गया।

१३ उपमान प्रमाणसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जैसे व्यवहारमें लोग कहते हैं कि यह पुरुष कैसा वीत राग है, इस वीतरागकी उपमा देनेसे सिद्ध होता है कि कोइ वीतराग होगा तब ही लोग उस वीतरागकी उपमा देते हैं। अथवा जैसे श्रेणिक राजा का जीव अनागत (होनेवाली) चौबीसीमें तीर्थंकर होगा सो उनको उपमा देते हैं कि, इस अवसर्पणी कालमें श्री महावीर स्वामी हुए, उन्हींके सदृश श्रीपद्मनाभ स्वामी होंगे, सो वर्तमान कालकी चौबीशीके तीर्थंकरकी तरह भविष्यत् कालमें होनेवाले प्रथम तीर्थंकर हैं, उनको श्रीमहावीर स्वामीकी औपमा देकर बयान किया कि जैसे श्रीमहावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर

हुए, वैसे ही आगामी चौवीसीमें प्रथमतीर्थंकर होंगे, इस रीतिसे उपमान प्रमाण से देवका स्वरूप कहा।

१४ चौथा आगम प्रमाणसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जो आगमों (सिद्धांत, शास्त्र)में देवका स्वरूप लिखा है कि चौंतीस अतिशय, पैंतीस वाणी, इत्यादि अनेक प्रकार करके जो आगमोंमें वर्णन किया है सो यहां लिखनेकी कुछ आवश्यकता नहीं, क्योंकि आगमों अर्थात् शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है, इस रीति से आगम प्रमाणसे देवका स्वरूप कहा।

इस जगह चारो प्रमाणोंमें एक साथ ही पांच बोल उतारकर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे प्रत्यक्षादि चारो प्रमाणोंका स्वरूप जानना सो तो ज्ञेय है, और प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा आगम प्रमाण को ग्रहण करना सो उपादेय है, और बाकी सर्व हेय जानना, उत्सर्गसे प्रत्यक्षदेवको देखकर अपना देवपना प्रकट करना, और अपवादसे प्रत्यक्ष देवकी भक्ति करना। इस रीतिसे चारो प्रमाणोंमे पांचबोल इकट्ठा उतार कर दिखलाए।

(शंका)—चारों प्रमाणोंमें शामिल उतारनेसे जिज्ञासुको यथावत् बोध न होगा, इस लिए जिज्ञासुके ऊपर करुणा अर्थात उपकार बुद्धिसे भिन्न भिन्न स्वरूप समझाइए।

(समाधान) भो देवानु प्रिय ! अब भिन्न भिन्न उतारकर दिखलाते हैं, परन्तु निश्चय अर्थात शुद्ध व्यवहारकी रुचि वाले जिज्ञासुको यथावत् बोधका कारण है, इसलिए सद्गुरु यथावत

बतलाने वाला होय तो शुभव्यवहार न उठे और जो गुरु यथावत् बतलाने वाला न होय तो निश्चय और व्यवहार दोनोंसे अलग (भ्रष्ट) करदे, इस लिए शुद्ध गीतार्थ गुरुकी चरण सेवासे इन वस्तुओंका यथावत् ज्ञान होगा, नतु हरएक गुरुसे।

अब प्रत्यक्ष प्रमाणसे देवमें पांच बोल उतारते हैं, कि प्रत्यक्ष देवके यथावत स्वरूप समोसरण अतिशय आदिक को जानना सो तो ज्ञेय है, परंतु उसदेवका अपना देवपना प्रकट करनेका निमित्त जानकर उस निमित्तका बहुमान करना सो उपादेय है, और बाकी सब हेय जानना। उत्सर्गसे तो प्रत्यक्ष देवके गुणोंका निमित्त लेकर अपना देवपना प्रकट करना है, और अपवादसे प्रत्यक्ष देवके गुणोंको स्मरण करना अथवा बहुमान भक्तिमें चित्तका लगाना, इस रीतिसे प्रत्यक्ष देवमें पांच बोल उतारकर दिखलाए।

अब अनुमानसे देवके ऊपर पाचबोल उतारते हैं, ऊपर लिखे हुए अनुमान प्रमाणको यथावत् हेतु सहित साध्यको जानना सो तो ज्ञेय है, और हेतुसे जो साध्य सिद्ध हुआ जो देव, उस देवके अमृत रूपी वचनोंको ग्रहण करना सो उपादेय है, बाकी सर्व हेय है। और उत्सर्गसे तो जो देवका वाक्य ग्रहण किया था, उस वाक्यके अर्थको जानकर आज्ञा सहित क्रियादिक व्यापार करना। और अपवादसे व्यापार विना जो आज्ञाको मानना सो ही है, इस रीतिसे अनुमान प्रमाणसे देवके ऊपर पाचबोल दिखलाए।

अब उपमा प्रमाणसे देवपर पांचबोल उतारते हैं कि, उपमान प्रमाण से देवका जो स्वरूप ऊपर लिखा है, उसको ज्योंकात्यों जानना सो तो ज्ञेय है, और जिसकी उपमा दी जाती है उस उपमा वालेके गुणोंका ग्रहण करना सो उपादेय है, बाकी सर्व हेय है। उत्सर्गसे जो गुण जिस कार्यके वास्ते ग्रहण किया है उस कार्यको करना सो उत्सर्ग है, और कार्य न करयाके केवल गुणही ग्रहण करे सो अपवाद है, इसरीतिसे उपमान प्रमाणसे देवके ऊपर पांचबोल उतारके दिखलाये।

चौथा आगम प्रमाणसे देवके ऊपर पांच बोल उतारना सरल है, इसलिये यहा उतारकर नहीं दिखलाये, इन ऊपरके लिखे बोलोंका समझ लेगा वह आपही आगमपर उतार लेगा।

द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे देवका स्वरुप कहते हैं।

१५ प्रथम द्रव्यसे देवका स्वरूप कहते हैं—द्रव्यसे देवके दो भेद हैं, प्रथम लौकिक देव, दूसरा लोकोत्तरदेव। सो लौकिक देव तो उसको कहते हैं कि जो लौकिकमें देवकहलाते हैं, जैसे भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक, यहचार निकाय के बसने वाले इनको लौकिक देव कहते हैं, कोषादिम लिखा है कि (अमरा निर्जरा देवा) ऐसा अमरकोष का वाक्य है, इस लिए इनको लौकिक द्रव्य देव कहते हैं। और लोकोत्तर द्रव्य देव उसको कहते हैं कि जिससमयमें तीर्थंकर दीक्षालेकर ज्ञानसहित विचरते हैं, अथवा केवल ज्ञानी केवल ज्ञानकरके सहित देशना

नदे उस समयम द्रव्यसे देव होते हैं, इस रीतिसे द्रव्यसे देवका स्वरूप कहा।

अब द्रव्यसे देवपर पाचबोल उतारकर दिखाते हैं, कि जो स्वरूप हमऊपर लिख आए हैं उसको यथावत् लौकिक और लोकोत्तर द्रव्यसे देवका स्वरूप जानना सोतो ज्ञेय है। और लोकोत्तर द्रव्यसे देवका ग्रहण करना सो उपादेय है। अन्य सब हेय है, उत्सग से तो लोकोत्तर द्रव्यसे देवकी भक्ति करना तथा बहुमान करना सोही उत्सग है। और अपवादसे लाभ कारण धमहत विशेष उद्यम होनेके वास्ते सम्यक् दृष्टि लौकिक देवका बहुमान करे तो अपवादही जानना, इस रीतिसे द्रव्यसे देवके ऊपर पाच बोल उतार कर दिखलाये।

१६ दूसरा क्षेत्रसे देवका स्वरूप कहते हैं—

क्षेत्रसे देवके भी दो भेद है, प्रथम लौकिक, दूसरा लोकोत्तर, सो लौकिक क्षेत्रसे तो जो भवनपति पृथ्वीके भीतर रहते हैं, और व्यन्तर ऊपर रहते हैं और ज्योतिषी, वैमानिक ऊपरके लोकम अर्थात् आकाशम रहते है, इसका पाताल पृथ्वी अथवा ऊर्ध्व लोकम रहनेसे क्षेत्रसे लौकिक देव कहा, और लोकोत्तर क्षेत्रसे देव कौन है कि जिस क्षेत्रम तीर्थकर विचरते होय उन तीर्थङ्करोंको क्षेत्रसे लोकोत्तर देव कहते है जैसे १५ कर्म भूमि क्षेत्र है जिसमे ५ भरत ५ एरवतभरत, ५ महाविदेह, इन १५ क्षेत्रोंमें विचरनेवाले जो तीर्थंकर, अथवा

सामान्य वचनी हैं, अथवा भरत क्षेत्रमें २५॥ आर्य देश हैं। तथा जिन क्षेत्रोंमें तीर्थंकरोंके गर्भ, उत्पत्ति, जन्म, दीक्षा, केवल ज्ञान और निर्वाण होवे और केवल ज्ञान सहित विचरे, उनको लोकोत्तर क्षेत्रसे देव कहते हैं।

अब इसके ऊपर पाच बोल उतारते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको यथावत् जानना सो ज्ञेय है, और जो जिस क्षेत्रमें लोकोत्तर देव विचरनेवाले मोक्षदाता शुद्ध मार्ग बतानेवाले हैं वो भव्य जीवोंको उपादेय हैं। बाकी सब हेय हैं, और उत्सर्गसे तो जो क्षेत्रमे विचरनेवाले तीर्थंकर हैं, उनकी देशनादि श्रवण करना और उस उपदेशको अपना कल्याण करनेवाला जानकर उसमें उद्यम करना यही उत्सर्ग है। और अपवादमें कारण विशेष जो लौकिक क्षेत्र देवका स्वरूप ऊपर लिख आये हैं उनमेंसे किसी क्षेत्रवालेको धर्मकृत्यमें सहायता लेनेकेवास्ते आराधन करना सो अपवाद है, इस रीतिसे क्षेत्रमे देवके उपर पांच बोल उतारकर दिखलाये।

१७ तीसरा कालसे देवका स्वरूप कहते हैं—

जिस कालमें तीर्थंकरोंका जन्म, दीक्षा, अथवा केवल ज्ञानकी उत्पत्ति हो, जैसे श्रीऋषभ देव स्वामी तीसरे आरेमें उत्पन्न हुये उनसे लेकर चावीसमे श्रीमहावीर स्वामी चौथे आरेके अंतमें मोक्ष पधारे, इसी रीतिसे दश क्षेत्रोंकी अपेक्षासे काल इस रीतिसे लिया जायगा, और पाच महाविदेहकी अपेक्षा

करके तो कालशास्वता है, क्योंकि उन क्षेत्रोंमेंकोई ऐसा समय नहीं कि जिस समयमें तीर्थंकर, केवली न पावें। इस रीतिसे कालसे देवका स्वरुप कहा।

अब इस पर पाच बोल उतारके दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरुपको जानना सो तो ज्ञेय है, और जिस कालमें जो तीर्थंकरादि होय उस देवका उसी कालकी अपेक्षासे मानना सो उपादेय है, और बाकी सर्व हेय है। और उत्सर्गसे तो जब समो सरणमें बैठके प्रभु देशना देते हैं उस समयमें कालसे देव है, और अपवादसे देवकी प्रतिमाको सदैव देव बुद्धिसे मानना, इस रीतिसे कालसे देवके उपर पाच बोल उतारकर दिखाये।

१८ अब चौथा भावसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जिस समयमें समोसरणमें बैठे हुए भव्य जीवोंको अपने अमृतरूपी वचनोंसे मोक्षमार्ग प्राप्त होनेका प्रति बोध कराते हैं और आत्माका स्वरूप यथावत् बतायकर भव्यजीवोंको मोक्ष नगरमें पहुचाते हैं, उस समयमें भावसे देव हैं, इस रीतिसे भावसे देवका स्वरुप कहा।

अब इसपर भी पाच बोल उतारते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरुपको जानना सो तो ज्ञेय है, और अपने भावसे तरण तारण निमित्त कारण देवको मानना सो उपादेय है, बाकी सब हेय है। और उत्सर्गसे तो भाव देवके निमित्तसे अपनेमें भाव देवपना प्रकट करना। और अपवादसे जो उपादेयकी रीति कही

है उस रीतिसे देवको मानना सो अपवाद है, इस रीतिसे भाव देवका स्वरूप कहकर उसपर पांच बोल उतारकर दिखलाये, और चार प्रकार पूर्ण किये।

अब यहा तक तो हरेक जिज्ञासु समझे और कोई तरहका विकल्प न उठे, परन्तु अब जो इसके आगेके बोलोपर यही पाच बोल उतारते हैं उनको समजानेवाला आत्मार्थि शुद्ध गुरु स्याद्वादके रहस्यको जाननेवाला और अध्यात्मरस जिन्होंने पान किया हो वही गुरु जिज्ञासुको यथावत् समझायकर उसको आत्मबोध करावेंगे, और जिज्ञासुको शुभ व्यवहारकी रीतिमें यथावत् प्रवृत्त करायकर शुद्ध व्यवहारको दिखाय देंगे, नहा तो वर्तमान कालमें दु खगर्भित और मोहगर्भित वैराग्यवाले जिन आगमके अजान, आत्मअर्थसे निकल, और अध्यात्मके नामसे इन्द्रियोंका विषय भोग करते हुए, जिज्ञासुको शुभक्रियासे हटायकर निश्चयको समजाय देते हैं, और इन्द्रियोंके विषय भागमें लगाय देते है। क्योंकि इन्द्रियोंके भोगसे ता ससारी जीव अनादि कालका परिचित (सधा) है, इस लिये वह जिज्ञासु अध्यात्मके ग्रन्थ उन निकल अध्यात्मियोंसे पढ़कर शुभ क्रिया अर्थात् सामायिक, प्रतिक्रमण, पचखाणादिको छोड़कर वाचकज्ञानी बनकर हरेकसे वाद विवाद करता हुआ अपनी आत्माको ज्ञानी मानकर शुभ व्यवहारको उठा देते हैं, इस लिये हमारा भव्य जीवोंको यह कहना है अर्थात् उपदेश है कि, इन दोनो (दु ख तथा मोह गर्भित) विकल्पोंको छोड़कर ज्ञान

वैराग्यवाले शुद्ध गुरु द्रव्यानुयोगम रमण करनेवालेके पास पठन करके अपनी आत्मामे बुद्धि पूर्वक मनन अर्थात् विचार करें जिससे उनका कल्याण हो, अथवा शुद्ध गुरु कहनेवालेका संयोग न मिले तो इस प्रथम लिखी हुई बातें बारम्बार एकान्तमे बैठकर विचारेगा और शुभ व्यवहारमें प्रवृत्ति करेगा तो उसको इस प्रथम जो विषय कथन किया है उसका रहस्य प्राप्त हो जायगा, और अपनी आत्माका कल्याण कर लेगा। इतना लिखनेका तात्पर्य यह है कि यहांमे निश्चय सहित शुद्ध व्यवहारमे अगाड़ीक बात उतारते हैं, सो इस रहस्यको समझने वाले आत्मार्थि विरले सत्पुरुष हैं, और शुभ व्यवहारसे हाथ उठानेवाले विशेष है, इस लिये हमारा जो अभिप्राय था सो कालकी अपेक्षा देखकर लिख दिया, क्योंकि इस वर्तमान कालमे शुभ व्यवहारके उठानेवाले, अथवा अशुद्ध व्यवहारके स्थापन करनेवाले इन दोनोंका कदाग्रह देखकर लिखा है, सो आत्मार्थि भव्य जीव बुद्धिपूर्वक समझकर इस ग्रन्थको अपने कल्याणका हेतु जानकर बारम्बार मनन करेगा तो यथावत् जैन धर्मके रहस्यको प्राप्त होकर आत्माका कल्याण कर लेगा।

अब अनादि अनन्त, अनादिशान्त, सादिशान्तऔर सादि अनन्त इन चार भागोंसे देवका स्वरूप दिखलाते हैं।

१६ प्रथम अनादि अनन्त भागोंसे देवका स्वरूप कहते हैं।

अनादि अनन्त शब्दका अर्थकरते है कि जिसकी आदि और अन्तदोनो नहीं,तोदेखो कि 'अरिहन्त, इस शब्दका अनादि

अनन्त कहते हैं, क्योंकि यह शब्द कबऊत्पन्न हुवा सो नहीं कह शक्ते और यह शब्द कभी नष्ट हो जायगा यह भी नहीं कहसक्ते, इसलिए नामसे अनादि अनन्त देव हुआ। और स्थापनासे जो साश्वती जिन प्रतिमा है वे अनादि अनन्त हैं, क्योंकि न तो वे किसीकी बनाई हुई हैं और न कभी उन जिन बिम्बों (प्रतिमाओं) का अभाव होगा, इसलिये यह स्थापना करके अनादि अनन्त हैं। और महाविदेह क्षेत्रकी अपेक्षासे ऐसा कदापि न होगा कि उस जगह विद्यमान तीर्थंकर न पावेंगे, इस रीतिसे अनादि अनन्त देवका स्वरुप कहा।

२० दूसरा अनादी सात भागेसे देवका स्वरूप कहते है।

जो कोई भव्यजीव व्यहारनयसे देवको मानता हुआ ऋजुसूत्र नयसे अपनेमेंहीं देवपना उपयोग देकर मानने लगा, अथवा आठमे गुणस्थानमें जीव क्षपक श्रेणीकरके बारमें गुणस्थानमें अपना देवपना प्रकट किया, तो अन्यको अनादिसे देव बुद्धि करके माना था वह बुद्धि अन्यको देवमाननेकी अनादि थी सो उस जगह शान्त हो गई, यह अनादि शातभागेसे देवका स्वरुप कहा।

२१ तीसरा सादिशान्त भागेसे देवका स्वरुप कहते है।

जो भव्य जीव व्यवहार नयसे आविर्भाव (प्रकट) जो तीर्थंकरोंका देवपना है उसको निमित्त कारण मान कर स्तुति आदि करता है, और ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे तिरोभाव (दबा

हुआ) रूप अपनी आत्मामें उपयोग देताहुआ अपनेहींको देव माननेलगा, फिर ऋजुसूत्रनयका उपयोग दूरहुवा तब पीछा व्यवहार अरिहंतको देवमानने लगा, तो जो अपनी आत्माको देव माना था उसकी आदि हुई, और फिर जब अरिहंतको देवमाना तो अपनी आत्माको देव माना था उसका अंत हुआ। अथवा दूसरी रीतिसे भी दिखाते हैं कि, जिससमय शुद्ध देवको अंगीकार करता है, या शुद्ध देवको देवबुद्धि करके मानता है, उस समय तो शुद्ध देव माननेकी उत्पत्ति नाम आदि हुइ, और फिर मिथ्यात्वका प्रबल उदय होनेसे शुद्ध देवको त्यागकर कुदेवको मानने लगा तो शुद्ध देव माना था उसका अंत हुवा, इस रीतिसे सादि शान्त भांगेसे देवका स्वरूप कहा।

७२ सादि अनंत भांगेसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जो तीर्थंकरोंके नाम, गोत्र, कर्मके उदयसे जब देवपना प्रगट हुवा उस देव पनेके प्रगट होनेकी तो आदि है, फिर देवपना उनका कदापि मिटेगा नहीं, इस लिये सादि अनंत देव हुवा। अथवा जिस किसी भव्य जीवने चार घातिया कर्मोंको क्षय करके अनंत ज्ञान अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य प्रगट किये और जो देवपना प्रगट हुवा उसकी तो आदि है और उस देवपनेका कदापि अंत न होगा इस लिये अनंत है यह सादि अनंत भांगेसे देवका स्वरूप कहा।

अब इन चारों भांगोंमें एक साथ पांच बोल उतारकर

दिखाते हैं, सो प्रथम ज्ञेयका स्वरूप कहते हैं कि, जिस रीतिसे हमने ऊपर अनादि अनतादि चारों भांगोंका स्वरूप दिखलाया है इनका अच्छी तरहसे जानना सो तो ज्ञेय है, और इन चारोंमे से सादि शान्त भांगेका छोड़ना सो हेय है, और बाकी तीन भांगे उपादेय है। और इन चारो भांगोंमें उत्सर्ग इस रीतिसे है कि अनादि अनत और सादि अनत इन दोनो भांगोंके स्वरूपको ही स्मरण और विचारमें रखना, „ऐसा न हो सके तो अपवाद मार्गसे अनादि अनत भांगेका स्मरण अर्थात् विचार करे, इस रीतिसे इन चारों भांगोंमे पांच बोल कहे—अब जुदी जुदी रीतिसे एक एक भांगेपर पाचों बोल अलग अलग उतारके दिखाते हैं।

प्रथम जो अनादि अनत भांगेका स्वरूप लिखा है उसको जाने और उसके साथमे इतना विशेष जाने कि निश्चय अर्थात् निःसदेह शुद्ध व्यवहार करके मेरी आत्मा अनादि अनन्त देव स्वरूप है, परन्तु पौद्गलिक सयोगसे तिरोभाव हो रहा है, परन्तु निज (अपनी) सत्ता विचारनेसे आविर्भाव (प्रकट) रूपही है, इसमे कोई तरहका सदेह नहीं, इस रीतिसे जाननेका नाम ज्ञेय है, और ऊपर लिखा जो अनादि अनत देवका स्वरूप इसको हेय अर्थात् छोड़के अपनी आत्माको अनादि अनन्त निश्चय अर्थात् शुद्ध व्यवहारसे अभग मानना, इसीका नाम उपादेय है और इसीको एकत्वपनेसे अभेद होकर लय होना, इसको उत्सर्ग कहते हैं, और अपवादसे अपने एकत्वपनेमे लीन

न होनेके कारण समझकर ऊपर लिखे अनादि अनन्त देवके स्वरूपको स्मरण करना सो अपवाद है।

अब अनादि शान्त भागेमें पाच बोल उतारते हैं, परन्तु ऊपर जो अनादि शान्त भागेका स्वरूप लिखा है उसकी जिज्ञासुको दूर होनेके कारण खबर न पड़े, इस लिये प्रथम अनादि शान्त भागेका स्वरूप फिर दिखायके पीछे पाच बोल उतारगे, सो अनादि शात भागेकास्वरूप कहते हैं कि, जो कोई भव्य जीव व्यवहार नयसे देवको मानता हुआ, ऋजुसूत्रनयसे अपने मही देवपनेका उपयोग देकर मानने लगा, अथवा आठमे गुणस्थान वाले जीवने क्षपकश्रेणी करके बारमे गुणस्थानमें अपना देवपना प्रकट किया, तो अन्य अर्थात् दूसरेको अनादि से देवबुद्धि करके मानताथा वह अन्यको देव माननेकी बुद्धि थी सो इस जगह शात होगई। यह अनादि शात भागेसे देवका स्वरूप कहा। अब इस जगह ज्ञेय तो इसलिये हुवे स्वरूपका जानने का नाम है, और हेय इस जगह जो अन्यको देव बुद्धि मानता था उस बुद्धिको छोड़ना सो ता हेय है, बाकी सब उपादेय है। उत्सर्गसे तो आठमे गुणस्थान वाले जीवने क्षपकश्रेणी करके बारमे गुणस्थानमे अपना देवपना प्रकट किया वही उत्सर्ग है। अपवादमें उपयोग देकरके आठमे गुणस्थानमें अपनेको देवपने से मानना सो अपवाद है। इस रीतिसे अनादि शांतभागेसे देवके ऊपर पाचबोल उतारकर दिखलाए।

अब सादिशान्त भागेका स्वरूप फिर दिखलाके पाचबोल

उतारते हैं कि, जो भव्य जीव व्यवहार नयसे आविर्भाव जो तीर्थंकरोंका देवपना है उसको निमित्त कारण मानकर स्तुति करता है। और ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे तिरोधानरूप अपनी आत्मामें उपयोग देताहुवा अपनेहीको देव मानता हुवा, फिर ऋजुसूत्रनयका उपयोग दूर हुवा, तब व्यवहार नयसे अरिहंतको देव मानने लगा, उस समय अपनी आत्माको देव माना था उसकी तो आदि है और अरिहंतको देव माना तो अपनीआत्मा को देव माना था उसका अन्त हुवा। अथवा दूसरी रीतिसे जिस समय शुद्धदेवको अंगीकार करता है वा शुद्धदेवको देवबुद्धि करके मानने लगा, उस समय तो शुद्धदेव माननेकी उत्पत्ति नाम आदि हुई, और फिर मिथ्यात्वका प्रवल उदय होनेसे शुद्ध देवको छोड़कर कुदेवको मानने लगा तो, शुद्धदेवको माना था उसका अंत हुवा इस रीतिसे सादिशांत भागेसे देवकास्वरूप कहा। अब ऊपर लिखे हुए सर्वस्वरूपको जानना उसकानाम ज्ञेय है। और कुदेवादिको छोड़ना सो हेय है। बाकी सर्व उपादेय है। और उत्सर्ग करके तो जो ऋजुसूत्रनयसे अपनेमें ही देव बुद्धि मानना सोही उत्सर्ग है। और शुद्धदेवको देवबुद्धिमानना सो अपवाद है। इस रीतिसे सादिशांत भागेसे देवकास्वरूप और पांच बोल दिखलाए।

अब सादि अनंत भागेसे फिर देवकास्वरूप कहकर पांच बोल उतारते हैं। जो तीर्थंकरोंका नाम गोत्रकर्मके उदयसे जबदेवपना प्रकट हुवा उसदेवपना प्रकट होनेकीतो आदि है.

फिर देवपना उनका कभी मिटेगा नहीं इसलिए सादि अनन्त देव हुआ। अथवा जिस किसी भव्य जीवने चार घनघाति कर्मों को क्षय करके अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तचारित्र, अनन्त वीर्य प्रकट किए और उससे जो प्रकट हुआ देवपना उसकी तो आदि है और फिर उस देवपनेका कभी अन्त न होगा, इस लिए अनन्त है। यह सादिअनन्त भांगेसे देवका स्वरूप कहा। ऊपर लिखे हुए स्वरूपको जानना सोतो ज्ञेय है। शुद्ध व्यवहार अर्थात् निश्चय नयसे तो अपना देवपना प्रकट करना सो उपादेय है। बाकी सर्व हेय है। और उत्सर्गसे तो चार घनघाति कर्मों को क्षय करके जो अपना देवपना प्रकट करना सोही अत्युत्तम उत्सर्ग है। और अपवाद मार्गसे जिसका देवपना प्रकट हुआ है उसदेवके स्वरूपको सादिअनन्त भांगेसे मानना सो अपवाद है। इस रीतिसे सादि अनन्तभांगेसे देवके ऊपर पांच बोल उतारके दिखलाए और अनादि अनन्तादि चौभंगी का स्वरूप कहा—

अब नित्य, अनित्य आदि आठ पक्षोंसे देवका स्वरूप दिखलाकर उनपर पांचबोल उतारकर दिखलाते हैं।

२१ नित्यपक्ष।

देव जो है सो नित्य हैं क्योंकि सिद्धकी अपेक्षा करके देव नित्य है।

यहां कोइ ऐसी शंका करे कि चार घातिकर्म क्षय करे उस देव माना है, तो फिर सिद्धमें क्यों घटाते हो—

इसका समाधान देते हैं कि देखो अरिहन्त, यह शब्द नित्य है इस वास्ते देव नित्य ठहरा।

यहां फिर ऐसी शंका करे कि जिस समय अवसर्पणी, उत्सर्पणी कालके बीचमें जब धर्मका बिल्कुल विच्छेद हो जाता है फिर नवीन तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं, तब नवकारादि प्रकट करते हैं, जैसे इस अवसर्पणीमें प्रथम श्रीऋषभ देव स्वामी प्रथम तीर्थंकर हुए उनके पहले तो नवकार कोई नहीं जानता था, श्रीऋषभदेव स्वामीके पीछे, णमोअरिहन्ताणं, इस पदको जानने लगे, तैसेही पांचवें आरेके अंतमें जब धर्म विच्छेद हो जायगा, फिर जब श्रीपद्मनाभ तीर्थंकर उत्सर्पणीमें उत्पन्न होंगे तब फिर, णमोअरिहंताणं, इस पदको प्रकट करेंगे तो इस लिए यह अनित्य ठहरा।

इस शंकाका समाधान ऐसा है कि' णमोअरिहंताणं, यह पद तो नित्य है परन्तु धर्मके जानने वालोंके अभावसे इस पद का तिरोभाव हो जाता है, इस लिए यह पद तो नित्य ठहरा। दूसरा समाधान यह है कि महाविदेह क्षेत्रमें इस पदका किसी कालमें तिरोभाव नहीं होता है, और उस क्षेत्रमें द्रव्य तथा भाव करके भी अरिहन्तका किसी कालमें अभाव नहीं होता इस अपेक्षासे देव नित्य हैं, इस रीतिसे नित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा।

अब इसमें पांचबोल उतार कर दिखाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सोतो ज्ञेय है, और अवसर्पणी, उत्सर्पणीके

अंतकालमें जो अरिहन्त शब्दका तिरोभाव होता है उसको हेय जानना, बाकी सर्व उपादेय है। उत्सर्गमार्गसे तो निःसन्देह अपनी सत्ताकरके शुद्ध व्यवहारसे अपनेमें ही देवपना अर्थात् जो अपनी आत्मा है यही नित्यदेव है, ऐसा विचार करना सो उत्सर्ग है। और अपवादसे जो अरिहंतादि शब्दमें देवपने की नित्यता ऊपर लिखी हैं उसको अंगीकार करना, इस रीतिसे नित्य देव मे पांचबोल उतार के दिखलाए,

२४ अब दूसरा अनित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं।

भव्य जीव इस रीतिसे विचारे कि कुदेवकी अपेक्षासे सुदेवमें अनित्यता है, क्योंकि कुदेवमें कुदेवत्व नित्य है, इस अपेक्षासे सुदेवमें कुदेवत्व है, नही तो बस कुदेवपनेसे सुदेवमें अनित्यता ठहरी। अथवा इस रीतिसे विचारे कि मेरी आत्माके सिवाय अन्य देव सर्व अनित्य हैं, क्योंकि मैंने अज्ञान दशासे दूसरेको देव मान रक्खा था तो जो दूसरा मेरेसे अलग (जुदा) देव है सो अनित्य है, और उस अन्य देवकी अपेक्षासे मेरेमें अनित्यता है क्योंकि दोनोंकी परस्पर अन्योन्य अपेक्षा है, इस लिये एककी अपेक्षासे दूसरेमें अनित्यता है, इस रीतिसे अनित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा।

अब इसके ऊपर पांच बोल उतारते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है, और कुदेवका स्वरूप अर्थात् [illegible] जिसमें केवल कुदेवत्वही नित्य है इस नित्यतासे

उस कुदेवको अगीकार किया उसका जो छोड़ना सो हेय है। सुदेवको अपना निमित्त कारण जानकर ग्रहण करना सो उपादेय है। उत्सर्गसे तो अपनी आत्माके सिवाय सर्वकी अनित्यता अर्थात् और देव सर्व अनित्य है, और अपवादसे अपना देवत्व प्रकट न होनेसे अपनी आत्मा जो देव स्वरूप है उसकी अनित्यता मानना सोही अपवाद मार्ग है, इस रीतिसे अनित्य पक्ष पर पाच बोल कहे।

२५ अब तीसरा एक पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जो चारघाति कर्म क्षय करके केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न करे यो सर्व जीवोंकी एक रीति है, क्योंकि कोई भी इस रीतिके सिवाय दूसरी रीतिसे केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं करसका, इसीवास्ते जिनधर्ममें 'णमो अरिहंताणं' इस पदके कहनेसे सर्व तीर्थंकर और सामान्य केवली आदि इसपदके अन्तर्गत होनेसे इस एक वाक्यमें ही सर्वको नमस्कार होगया, इस रीतिसे एक पक्षसे देवका स्वरुप कहा।

अब इसके ऊपर पाच बोल उतारते है।

ऊपर लिखे स्वरूपको जानना उसका नाम ज्ञेय है। और इस जगह हेय कुछ है नहीं, केवल उपादेय अर्थात् चार घाति कर्म क्षय करना वही उपादेय है। और उत्सर्गमार्गसे तो अपने चार घाति कर्म क्षय करनेका विचार करे। तथा अपवादमार्गसे नयगम, संग्रह नयकी सत्ताको देखता हुआ सर्वमें एकता है

ऐसा विचारे है सो अपवाद हैं, इस रीतिसे एक परम देवके ऊपर पाच बोल उतारकर दिखलाये।

२६ अब चौथा अनेक पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जैसे वर्तमान चोवीसीमें चौवीस तीर्थंकर हुए उनको जुदे जुदे तीर्थंकर मानते हैं, फिर उनके देहकी अवगाहना जुदी जुदी होनेसे जुदे जुदे देव कहे जाते हैं, और जिस जिस भव्य जीवको जिस जिस तीर्थंकरके शासनमें समकित वा मोक्षकी प्राप्ति होय वह भव्य जीव उसी तीर्थंकरको विशेष अपेक्षासे देव मानता है, इस लिये अनती चोवीसीमें अनते तीर्थंकर हुए तो द्रव्य करके अनते देव हुवे। इस रीतिसे अनेक पक्षमें देवका स्वरूप कहा, अब इसपर पाच बोल उतारते हैं।

ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है। और वर्तमान कालकी अपेक्षा लेकर देवको देव बुद्धिसे मानना सो उपादेय है। बाकी सर्व हेय है। और उत्सर्गसे अन्य देवका निमित्त कारण मानना, और अपवादसे जो सर्व देवका विचार ऊपर लिखा है उसका विचार करना सो अपवाद है इस रीतिसे अनेक पक्षके ऊपर पाच बोल उतारके दिखाये।

२७ पाचमा सत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं।

देवका द्रव्य, देवका क्षेत्र, देवका काल, देवका भाव, इस करके तो देवमें देवत्व सत्य है। सो देवका द्रव्य क्या है कि गुणपर्यायका भाजन इसको द्रव्य कहते हैं। देवका क्षेत्र ऐसा

है कि जिसमे ज्ञानादिगुण रहे। और देवका काल उत्पादव्यय अर्थात् जिस समयमें ज्ञान है उस समयमें दर्शन नहीं और जिस समयमें दर्शन है उस समयमें ज्ञान नहीं। इस रीतिसे जो ज्ञान और दर्शनका उत्पाद व्यय उसका नाम काल है। और भाव उसको कहते हैं कि अपने स्वरूपमें अर्थात् ज्ञान दर्शनमें रमण करना, इस करके देव सत्य है। अथवा देव उसीका नाम है कि जो तारनेवाला है, क्योंकि वो सत्य स्वरूपही है, जो उसके सत्यस्वरूपको पहिचानकर उसके कहेहुए सत्य उपदेशको ग्रहण करके जो किया करेगा सो सत्य स्वरूपको प्राप्त होगा, इस रीतिसे सत्यपक्षसे देवका स्वरूप कहा।

इसके ऊपर पांच बोल उतारके दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है, और सत्य देवको निमित्त कारण जानकर अपनी आत्माकी सत्यताको प्रकट करना सो उपादेय है। बाकी सर्व हेय है। उत्सर्गमार्गमें तो अपनी आत्माके द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भावमें संग्रहनयकी सत्ताको देखता हुवा विचार करे सोही उत्सर्ग है। अपवादसे देवकेही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भवमें अपने चित्तको लगाना, उसका नाम अपवाद मार्ग है। इस रीतिसे सत्यपक्षसे देवका स्वरूप कह कर पांच बोल उतारके दिखाये।

२८ अब छठा असत्यपक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं।

असत्य देव अर्थात् कुदेवका द्रव्य, [illegible] क्षेत्र, कुदेवका काल, कुदेवका भाव [illegible] चारों करके

से देवका स्वरूप असत्त है, जो कुदेवके स्वरूपसे देवका स्वरूप असत्य न माने तो कोई कार्यकी सिद्धि न होय, इसवास्ते कुदेवकी अपेक्षासे सत्य देव भी असत्य है, यह असत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा।

अब इसमें पांचबोल उतार कर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है। कुदेवके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें कुदेवके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी असत्यता मानना सो उपादेय। बाकी सर्व हेय है। उत्सर्ग मार्गसे तो जो उपादेय है उसमें रमण रूप विचार सो ही उत्सर्ग है। और उपादेय को जानना सो अपवाद है। इस रीतिसे असत्य पक्ष पर पांच बोल उतार कर दिखलाए।

२६-३० वक्तव्य तथा अवक्तव्य पक्ष।

सातमा वक्तव्य तथा आठमा अवक्तव्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं कि वक्तव्य कहते देवका स्वरूप अनेक रीतिसे जिज्ञासुको समझाते हैं और स्तुति आदि करते हैं, यह तो वक्तव्य हुआ। और अनेक प्रकारसे देवके गुणोंका वर्णन वचन द्वारा करें तथापि उनके गुणोंका पार नहीं आता है, इसलिए अवक्तव्य है। क्योंकि जैसा देवका स्वरूप है वैसा मनुष्य तथा देवताकी क्या शक्ति है परन्तु केवली भगवान् ज्ञानसे जानते हैं परन्तु वचनसे सम्पूर्ण स्वरूप नहीं कह सके, इस रीति से वक्तव्य तथा अवक्तव्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा

अब दोनों पक्षोंपर पांच बोल उतार कर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है। और यथारूप शब्दसे जो देवका स्वरूप कहनेमें आवे सो उपादेय है। बाकी सर्व हेय हैं। और उत्सर्गसे तो भगवतकी स्तुति आदिक से अपने चित्तकी एकता करे। और अपवादसे जो भगवतकी स्तुति आदिक है उसका यथावत् रहस्य जिज्ञासुको समजावे, इस रीतिसे दोनों पक्षोंपर पाच बोल उतारे और आठ पक्षोंका स्वरूप वर्णन किया।

अब भेद, अभेद, भव्य, अभव्य, नित्य, अनित्य, और परम स्वभाव, इन सातों बोलोंसे देवका स्वरूप दिखाके फिर पांच बोल उतारेगे।

१ भेद स्वभाव।

जितने तीर्थंकर होते हैं उन सबोंमें आपसम अवगाहनादि लक्षणोंसे भेद होता है, अथवा सामान्य केवलीसे तीर्थंकरमें भेद होता है, क्योंकि तीर्थंकर महाराज समोसरणके त्रिगडेमें बैठकर देशना देते हैं, और सामान्य केवली विगर त्रिगडेमें बैठेही देशना देते हैं। और मूसुया केवली आदि देशना देते ही नहीं हैं। एक तो इस रीति से भेदस्वभाव है। और दूसरी रीति यह है कि जो भव्य जीव स्तुति आदिक करता है कि हे प्रभु मेरेको तारो तो भेद स्वभाव होनेसे ही यह कहना बनता है। अथवा २४ तीर्थंकरोंका जुदे जुदे देव मानते हैं, यहभी भेद हुवा, इस रीतिसे भेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहा।

अब इसमें पाचबोल उतार कर दिखाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना इसका नाम ज्ञेय है। और असुद्धा केवलीको हेय जानकर छोड़ना, क्योंकि जो देशना नहीं देते उनसे किसी भव्य प्राणीका उपकार नहीं होता, इस लिये उनको हेय अर्थात् छोड़ना कहा। और तीर्थंकर तथा सामान्य अरिहंतको ग्रहण करना सो उपादेय है। और उत्सर्ग मार्गसे तो तीर्थंकर आदिकों को भेद स्वभावसे निमित्त कारण पुष्ट आलम्बनसे तारने वाले समजकर उनकी स्तुति आदिक करना, और अपवाद मार्गसे निमित्त न मानकर केवल भेदमें स्तुति आदिक करना सो अपवाद मार्ग है। इस रीतिसे भेद स्वभावसे देवके ऊपर पाच बोल उतार कर दिखाये।

१० अभेद स्वभाव।

जितने तीर्थंकर हुए अथवा जितने सामान्य केवली हुए इनमें कोई तरहका भेद नहीं है, क्योंकि अपने अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्रमें रमण करना यही सबका स्वभाव है इस रमणता रूप स्वभावसे किसीमें भेद नहीं है। अथवा जिस समयमें जो कोई भव्य जीव व्यवहार नयसे स्तुति करता हुवा देवके व्यक्तिभाव स्वरूपको विचारता हुआ ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षासे अपने शक्तिभावका अध्यारोप करके अभेद स्वभाव मानता है, उस समयमें अपनी आत्मा ही अभेद स्वभावसे देव स्वरूप है, इस रीतिसे अभेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहा।

अब इसके ऊपर पाच बोल उतार कर देखाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है, और हेय इस जगह कुछ नहीं है। और सबमे अभेद करना सो उपादेय है, और इस जगह उत्सर्ग अपवाद भी कुछ नहीं है परन्तु भव्य जीवके विचार अपेक्षासे जो ऋजुसूत्र नयको ग्रहण करनेसे जो भव्य जीव उस देवका व्यक्तिरुप प्रकट हुवा जो ज्ञान दर्शन चारित्र उनका अपनी शक्तिरुपमें अध्यारोप अभेद करके करना इस रीतिका जो विचार सो अति उत्सर्ग है। और अपवादसे तो जो उपादेयमें ग्रहण किया है वही अपवाद भी है। इस रीतिसे अभेद स्वभावसे देवपर पाच बोल उतारे।

३३–३४ भव्य स्वभाव और अभव्य स्वभाव।

प्रथम भव्य, अभव्यका लक्षण दिखाते हैं, कि भव्य नाम तो उसका है कि जिसका परिणामी अर्थात् पटण स्वभाव हो, तो देखो जो देवका भव्य स्वभाव न हो तो जो ज्ञेय का पलटण रुप इसको कदापि न देख सके, अथवा जो भव्य जीव देवके स्वरुपको विचारता है उस समय जो जो देवके स्वरुपके गुणादिकोंको स्मरण रुप करता हुआ, त्यों त्यों उस भव्य जीवका अध्यवसाय है सो उस प्रभुके गुणानुयायि परिणाम पाता हुवा चलता है, तो देवका भव्य स्वभाव होनेसे उस देवको मानने वालेका भी भव्य स्वभाव हुवा। इस रीतिसे भव्य स्वभावसे देवका स्वरुप कहा। इससे जो विपरीत स्वभाव

है अर्थात् जो कदापि न पलटे उसको अभव्य स्वभाव कहते हैं सो जो देवमें देवपना प्रकट हुआ सो कदापि न पलटेगा, अथवा जिस किसी भव्य जीवने शुद्ध निश्चय नयसे जो देवका स्वरूप पहिचान लिया वो उस भव्य जीवसे कदापि अलग न होगा। इस रीतिसे अभव्य स्वभावसे देवका स्वरूप कहा इस रीतिसे दोनों पक्षोंकास्वरूप दिखलाया।

अब दोनोंपक्षोंके ऊपर पांच बोल उतारकर दिखाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है। और जो भव्य जीव देवके स्वरूपको विचारता है उस समयमें देवके गुणादिको स्मरण करता हुआ अपने परिणाम धारासे प्रभुके गुणानुयायी अपने गुणोंको करता है वही उपादेय है। बाकी सब हेय है। उत्सर्गमार्गसे तो जो प्राणी अपने आत्मगुणमें प्रवर्ते वही उत्सर्ग है। और अपवादसे जो हम ऊपर लिख आये हैं देवका स्वरूप उसको विचारना सो अपवाद है। और इससे जो विपरीत सो अमन्य स्वभावम जान लेना। अथवा जिस रीतिसे हम भव्य स्वभावका स्वरूप कहकर अभव्यका स्वरूप ऊपर लिख आये हैं, उसी रीतिसे जिज्ञासु पांच बोल अभव्य स्वभावमें समज लेय। इस रीतिसे भव्य स्वभाव, अभव्य स्वभावका स्वरूप कहकर दोनोंपर पांच बोल दिखलाये।

३५-३६ नित्य और अनित्य स्वभाव।

देवमें भव्यजीवको तारनेका ही नित्य स्वभाव है। अथवा जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, इनमें जो रमणता वोही उसका नित्य

स्वभाव है। यह नित्य स्वभाव हुआ। और इससे जो विपरीत अर्थात् पर वस्तुमें रमणता करना उस पर (पुद्गलिक) वस्तुमप्रवर्तन, होना इस अपेक्षा करके देवका अनित्य स्वभाव है, अथवा जो जीव उसका देव न माने उस जीवको वो न तार सके। इस अपेक्षासे देवका अनित्य स्वभाव हुआ। इस रीतिसे दोनों स्वभावोंसे देवका स्वरूप दिखलाया।

अब इनपर पाच बोल उतारकर दिखलाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है। और ज्ञान, दर्शन चरित्र, इनमें जो रमण करना इसका ही विचार करना यही उपादेय है। बाकी सबहेय है। उत्सर्ग से तो देव सदा अपने ही स्वरूप में रमण करता है ऐसा जो विचार सो उत्सर्ग मार्ग है। और दूसरे को तारने में यह देवका स्वरूप निमित्त कारण है, ऐसा जो विचार सो अपवाद मार्ग है। इस रीतिसे पाच बोल उतार कर दिखाये और नित्य अनित्य स्वभावका स्वरूप कह कर दिखलाया।

३७ परम स्वभाव।

जो भव्य जीव देवको देव बुद्धिमान कर उनके उपदेशको अंगीकार करे उसीको वे तारते हैं, उनमें जो तारनेका स्वभाव सोही परम स्वभाव है। इस रीति से परम स्वभाव से देवका स्वरूप कहा।

अब परम स्वभावपर पाच बोल उतार कर दिखलाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है। और उनको देव

बुद्धि मानकर निमित्त कारण जानकर उनके उपदेशको अंगीकार करना सो उपादेय है। बाकी सब हेय है। उत्सग मार्गसे भव्य जीव,ऐसा समजकर ग्रहण करे कि जो इनकी आज्ञा है सो ही मेरेको तारेगी यह उत्सर्ग है। और अपवादमार्ग से बिना विचार के तारने वाला देव है और कुछ उद्यम न करे इसका नाम अपवाद है। इस रीतिसे परमस्वभाव पर पाच बोल उतारके दिखाये।

अब छ कारकोंपर देवका स्वरूप दिखलाने के लिये प्रथम छ कारकोंक नाम कहते हैं ? १ कर्ता, २ कर्म, ३ करण, ४ सम्प्रदान, ५ अपादान, और छठा आधार। इसरीतिसे छः कारकके नाम कहे।

३८मे४३तक छ कारकोंमें शामिल उतारते हैं।

प्रथम जिस समयमें जो जीव देवपना प्रकट करनेको प्रवृत्त होता है यह जीव कर्ता है। और देवपना प्रकट होना उस जीवका काम अर्थात् कार्य है। और जो शुक्ल ध्यानादिसे गुणस्थानका चढ़ना यह करण है। और जिसके अर्थ कार्यको करे उसका नाम सम्प्रदान है। तो इस जगह सम्प्रदान क्या है कि आत्मामें रमण के वास्ते, यह सम्प्रदान हुआ। अपादान उसको कहते हैं कि प्रथम पर्यायका व्यय होना और नवीन वस्तुका उत्पादन अर्थात् उत्पन्न होना, इसका नाम अपादान है। तो इस जगह चार घातीकर्मोका क्षय होना और अनंत ज्ञान, अनंतदर्शन, अनंत

चरित्र, अनत वीर्य, इस अनत चतुष्टय का प्रकट होना यह इस जगह अपादान है। और आधार उसको कहते हैं कि जो गुण प्रकट हुए उन को आत्माने धारण किए, इस लिए आत्मा आधार है। इस रीति से छ कारकों से देवका स्वरूप कहा।

अब इनपर पाच बोल उतार कर दिखाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको यथावत् जानना सोतो ज्ञेय है, और कर्म (क्रया) तथा अपादान यह दो उपादेय है। बाकी सर्व हेय है। उत्सर्ग से तो करता, करण आदिकोंसि व्यापार करता हुआ अपादानसे गुणको प्रकट करके अपनेमें धारण करे। और अपवादसे गुण प्रकट न होयतो केवल निचारूप कम (कार्य) करण आदिकोंमें किया करे, यह अपवाद मार्ग है। इस रीतिसे छओं कारकोंपर पाच बोल उतारे।

(प्रश्न) आपने कर्तादि छओं कारकोंमे शामिल करके पाचो बोल उतारे और एक एकमे जुदे जुदे नहीं उतारे सो जुदे जुदे कारकोंपर जुदे जुदे पाचो बोल उतार कर दिखलाने चाहिये।

(उत्तर) भोदेवानुप्रिय—इस तुमारे प्रश्नका उत्तर ऐसा है कि इस जिनमतमें स्याद्वाद शैलीके जाननेवाले पुरुष विरले हैं, और कर्ताका आशय जाने विगर अपनी मनोकल्पना करके शुद्ध मार्गसे भ्रष्ट होकर अपनी इन्द्रियोंका भोग करनेके वास्ते विपरीत अर्थ समजकर कुमार्गमें प्रस्तुत हो जाते हैं, क्योंकि इस स्याद्वाद सिद्धान्तमे कोई वचन तो नयकी अपेक्षासे है,

कोई वचन उत्सर्ग है, कोई अपवाद है, कोई कारण है, कोई कार्य है, कोई चरितानुवाद है, कोई वचन प्रवृत्तिमार्गका है, कोई द्रव्यार्थिक है, कोई पर्यायार्थिक है, इत्यादि अनेक रीतिसे इस जैन मतके स्वरूपका यथार्थ जाननेवाले वचनोंको प्रतिपादन करते हैं, सो उन वचनोंके रहस्यको यथार्थ न जानकर दु ख गर्भित मोह गर्भित वैराग्यवाले इधरके उधर लगाय देते हैं, इस लिये इन छओं कारकोंको एक साथ उतार कर दिखाये थे, परन्तु अब तुमारे प्रश्न करनेसे किंचित् भावार्थ छओं कारकोंके ऊपर जुदा जुदा उतारकर दिखाते हैं।

प्रथम कर्तामें पांच बोल उतारते हैं।

कर्ता दो प्रकारके कर्म करता है सो इस जगह मुख्य कर्ता कौन है कि 'जीव, सो यह जीव दो तरहके कर्म करता है एक तो संसारकी वृद्धि होनेका कर्म करनेवाला भी जीव है, और दूसरा कर्म जो संसारकी निवृत्तिका करना अर्थात् जन्म मरणका मिटाना, सो इन दोनोंका करनेवाला जीव है, सो इन दोनों प्रकारके कर्म करनेकी जो परिणति अर्थात् परिणाम उसका जानना इसका नाम ज्ञेय है। अब इसमेंसे संसारकी वृद्धि होनेका परिणाम उस परिणतिको तो हेय जानकर छोड़ना यह इस जगह हेय हुआ। और जो निवृत्ति होनेका जो परिणाम अर्थात् जिससे जन्म मरण मिटे उसमें अपने परिणाम अर्थात् परिणतिको ग्रहण करे यह उपादेय है। और उत्सर्गमार्गसे तो जिसमें निवृति होकर

अपना आत्मस्वरूप प्रकट होय ऐसी कार्यको कर्ता करे, कदाचित् ऐसा न हो शके तो अपवाद मार्गसे शुभ बन्धादिकका कर्ता बने, क्योंकि शुभबन्धका कर्ता बनेगा सो शेषमें यह भी निवृत्तिके ही फलका साधक होगा। इस रीतिसे कर्तामें पांच बोल उतारकर दिखलाये, इसी रीतिसे बाकीके सर्व कारकोंमें जान लेना।

अब सातोंनयके ऊपर पांच बोल उतारनेके वास्ते प्रथम सातोंनयका स्वरूप दिखलाते हैं।

४४ नयगमनयसे देवका स्वरूप कहते हैं।

प्रथम नयगमनयसे जिस समयमें तीर्थंकर महाराजका जन्म हुआ, उस समय सौधर्म इन्द्रने अवधिज्ञानसे भगवत्का जन्म जानकर अपने देवलोकमें घंटा बजवाया, इसी रीतिसे चौसठ इन्द्र भगवानके जन्म महोत्सवके वास्ते भगवत्को मेरु पर्वतपर लेजाके महोत्सव करके अपने जन्मको सफल करते हैं, इस जगह भगवत्का पूजा अतिशय प्रकट हुआ, यह नयगम नयसे देवका स्वरूप कहा।

४५ संग्रह नयसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जब भगवतका लोकान्तिक देवता आयकर विनति करने लगे कि हे प्रभु तीर्थकरो प्रवर्तावो और भव्य जीवोंको तारो, फिर भगवान वर्षीदान देने लगे और वर्षीदान देकर दीक्षाके उत्सवमें मनुष्य और देवता सर्व मिलकर वनमें जहां प्रभुको दीक्षा लेनी थी वहां आय पहुचे, यहा तक संग्रहनयसे देवका स्वरूप हुआ।

४६ व्यवहार नयसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जिस समय भगवत्ने आभरणादिक सब उतारके सब व्रत सामायक उच्चारण किया और पंचमुष्टि लोच करके अणगार अर्थात् साधु बन गये और पांच समिति, तीन गुप्तिको पालन करते हुये देशोंमें विचरने लगे, यहा तक व्यवहार नयसे देवका स्वरूप हुआ।

४७ ऋजुसूत्र नयसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जिस समय भगवत् अपनी आत्माका अंतरंग उपयोग देकर आठमे गुणस्थानकमें सविकल्प प्रथकत्व सप्रविचाररूप शुक्लध्यानके प्रथम पायेमें आत्मस्वरूप विचारने लगे, यहांतक ऋजुसूत्र नयसे देवका स्वरूप हुआ।

४८ शब्दनयसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जब क्षीण मोह बारम (द्वादश) गुणस्थानको प्राप्त हुए, तब 'एकत्व वितर्क अप्रविचार' नामा शुक्लध्यानके दूसरे पायेमें स्थित होकर चार घनघाति कर्मोंको क्षय करते हैं, यहांतक शब्द नयसे देवका स्वरूप हुआ।

४९ समभि रूढ़ नयसे देवका स्वरूप कहते हैं।

जब चार घनघाति कर्मोंको क्षय किया उसी समय केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न होकर लोकालोकके भूत, भविष्यत वर्तमान, कालके स्वरूपको दर्शनसे देखते हैं, ज्ञानसे जानते हैं, यहांतक समभिरूढ़नयसे देवका स्वरूप हुआ।

५० एवभूतनयसे देवका स्वरूप कहते हैं—

जब भगवत्को केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुवा उसी समय ६४ इन्द्र आयकर चारों निकायके देवताओंने मिलकर समोसरणकी रचना की और आठ महाप्रातिहार्य संयुक्त सिंहासनके ऊपर भगवत् विराजमान हुए, तीन छत्र मस्तकके ऊपर लगे हुए, इन्द्र चामर करते हुए, तीनोंतर्फ तीन बिम्बों सहित भगवत् विराजमान होते हुए, चौतीस अतिशय, पैंतीस वाणी करके संयुक्त बारह पर्षदाके सामने देशना देते हैं, उस समय एवभूत नय वाला देव मानता है, यह एवभूत नयसे देवका स्वरूप कहा।

अब प्रथम एकरीति तो यह है, कि जो सातोंनयोंका स्वरूप हम ऊपर लिख आये हैं, उसको जानना सो तो ज्ञेय है, और इनमेंसे प्रथमके तीन (नयगम, संग्रह, व्यवहार) नयोंका स्वरूप द्रव्यार्थिककी अपेक्षा होनेसे हेय अर्थात् छोड़नेके योग्य हैं, बाकी सर्व उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य हैं, क्योंकि वैसे तो शब्द नयमें ही ग्रहण करनेके योग्य था, परन्तु ऋजु सूत्र नय उत्तर उत्तर गुण विशुद्ध होनेसे पर्यायार्थिककी अपेक्षासे उपादेय कही। इन नयोंमें उत्सर्ग मार्गसे तो केवल एवभूत नय है, क्योंकि देखो जिस समयमें तीर्थंकर महाराज समोसरणके बीच त्रिगड़ेमें विराजमान होकर बारह परषदाके सामने भव्य जीवोंको आत्मस्वरूपका उपदेश देते हैं, उस उपदेशके होनेसे अनेक भव्य जीव परमपदको प्राप्त होते हैं,

इस रीतिका जो विचार सो उत्सर्गमार्ग है और अपवादमार्ग इसमें ऐसा है कि किंचित् शब्द नय और समभिरूढनयका गुण अर्थात् ऊपर लिखे स्वरूपको विचारना सो अपवादमार्ग है, इस रीतिसे सातोंनयमें पांच बोल उतारे।

अब दूसरी रीतिसे एक एक नय पर जुदे जुदे पांचों बोल उतारकर दिखानेके वास्ते फिर एक एक नयका स्वरूप कहते हैं।

नयगमनय।

नयगमनयमें जिस समयमें तीर्थंकर महाराजका जन्म हुवा उसी समय सौधर्म इन्द्रने अवधि ज्ञानसे भगवत्का जन्म हुवा जानकर अपने देवलोकमें घंटा बजाया, इसी रीतिसे ६४ इन्द्र भगवत्का जन्म महोत्सव करनेके वास्ते भगवत्को मेरुपर्वतपर लेजायकर महोत्सव करके अपना जन्म सफल करते हैं। इस जगह भगवत्का पूजा अतिशय प्रकट हुवा, और इस नयगम नयमें संकल्प, आरोप और एक अंश उत्पन्न होनेसे भी वस्तुको यथावत् मानता है, इस लिये इसका नाम नयगमनय है क्योंकि इसमें किसी तरहका गम नहीं है, दूसरा इसमें भूत, भविष्यत, वर्तमान कालसे भी कई तरहके भेदोंसे द्रव्यानुयोगके जानने वाले शुद्ध शुद्ध यथावत् समझ सक्ते हैं।

अब इसमें पांच बोल इस रीतिसे हैं कि ऊपर लिखे हुए स्वरूपको यथावत् जानना उसका नाम तो ज्ञेय है। और संकल्प अथवा अध्यारोप आदिक कोई अपेक्षासे हेय है। बाकी सर्व

उपादेय है। और जो उपादेय है सो ही उत्सर्गमार्ग किसी अपेक्षासे है। और जो अपेक्षाको न समज शके उसके वास्ते जो एक अंश उत्पन्न होना यही उत्सर्गमार्ग है। और जो अंशका उत्पन्न न होना और अध्यारोपको अंगीकार करे यो कोई अपेक्षासे अपवाद है, इस रीतिसे नयगमनयमें पांच बोल उतारकर दिखाये।

संग्रहनय।

जिस समय भगवत्को लोकान्तिक देवता वधांपन अर्थात् विनति करने लगे कि हे प्रभु तीर्थका प्रवर्तावो और भव्य जीवोंको तारो, फिर भगवत् वर्षीदान देकर जब दीक्षाके उत्सवमें मनुष्य तथा देवता सर्व इकट्ठे हो करके वनमें जहां प्रभुको दीक्षा लेनी थी वहां जाय पहुंचे। यहा तक संग्रहनयका स्वरूप हुवा। इस संग्रहनयके भी अनेक भेद हैं, और इस नयमें केवल सत्ताका ग्रहण है और एक वस्तुके कहनेसे जितने उस वस्तुके अवयव हैं उन सर्वको ग्रहण कर लेता है, अथवा एक कार्यके जितने कारण हैं उन कारणोंमेंसे एकका भी नाम लेनेसे सर्व कारणोंको इकट्ठे कर लेता है, इस लिये इसका नाम संग्रहनय है।

अब इस नयमें पांचूंबोल उतारकर दिखाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपका जानना सो तो ज्ञेय है। और इसमें उपादेय इस रीतिसे है कि जो तीर्थ प्रवर्तानेके वास्ते वर्षीदान देकर दीक्षा लेनेके सन्मुख हुए, इस जगह भी अपेक्षासे ऊपर लिखी वस्तु उपादेय है, बाकी सर्व हेय है। उत्सर्गमार्गसे तो जो भगवत्ने

अपने आत्मगुणोंको तिरोभावसे आविर्भाव करनेके वास्ते चित्तको सन्मुख किया सो उत्सर्ग है। और अपवादमार्गसे तो तीर्थादिका प्रवर्तना और वर्षीदानका देना, यह भी उनकी पुण्य प्रकृतिका भोग और संसारका उद्धार ऐसा जो विचार सो अपवादमार्ग है, इस रीतिसे संग्रहनयपर पांच बोल उतारे।

व्यवहारनय।

व्यवहारनयसे जब भगवंतने आभरणादि सर्व उतारकर सर्व व्रत सामायक उच्चारण किया और पंचमुष्टि लोच करके अणगार अर्थात् साधु बन गये और पांच समिति तीन गुप्ति पालते हुए देशोंमें विचरने लगे और सर्व जीवोंकी आत्माको अपनी आत्माके समान जानने लगे और निरंतर समताभावमें प्रवर्तते रहते हैं। इस जगह कोई शंका करे कि जब सर्व व्रत सामायक उच्चारण नहीं किया था उस समय उनका समता परिणाम न होगा—इस शंकाका ऐसा समाधान है, कि सत्ता और अंतरंग परिणाम (अध्यवसाय) से तो भगवत् तीन ज्ञान सहित माताके गर्भमें आते हैं तभीसे समताभाव रहता है, परन्तु प्रत्यक्ष देखनेमें जब तक गृहस्थाश्रममें रहे तबतक माता, पिता, पुत्र, कलत्रादि सम्बंधियोंसे अथवा राजकार्यसम्बन्धि आदि अनेक कार्योंमें प्रवृत्त होनेसे बाह्यरूप समता परिणाम देखनेमें नहीं आता इस लिये यह व्यवहार नयवाला गुण प्रत्यक्ष रूपसे निगर माने नहीं, जो गुण बाह्य दृष्टिसे देखनेमें आवे

उसीको अंगीकार करता है, इसी लिये इसको व्यवहारनय कहते हैं।

अब इस नयपर पाच बोल उतारकर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है, और उपादेय इसमें इस रीतिसे है कि पाच समिति, तीन गुप्ति पालते हुए ग्राम, नगर आदिमें विचरना सो उपादेय है। और बाकी सर्व किसी अपेक्षासे हेय है। और उत्सर्गमार्गसे तो पाच समिति और तीन गुप्तिमें लीन होना और आत्मगुणके प्रकट होनेमें जो उद्यम सो उत्सर्ग है। अपवादमार्गसे जो कर्मोके वश करके परीषह आदिक का सहन करना और उसमे जो कोई तरहका किञ्चित् प्रमादका होना सो अपवादमार्ग है, इस रीतिसे व्यवहारनयमें पाच बोल उतारकर दिखलाये।

ऋजूसूत्रनय।

ऋजूसूत्रनयसे जब भगवत् अपनी आत्माका अंतरंग उपयोग देकर आठमे गुणस्थानमें सविकल्प प्रथक्त्व सप्रविचारसे शुक्ल ध्यानके प्रथम पायेमें आत्मस्वरूप विचारने लगे, यहांतक ऋजू सूत्रनयसे देवका स्वरूप है।

अब इस नयके ऊपर पाच बोल उतारकर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है। और आत्मस्वरूप को विचारना सो उपादेय है। और बाकी सर्व हेय है। और जो उपादेय है सोही उत्सर्गमार्ग है। और इस जगह तीर्थंकरोंकी अपेक्षा से करके तो कोई अपवाद है नहीं, परन्तु सामान्य

अरिहंतकी अपेक्षासे और आठमे गुणठाणेसे ऊपर न चढ़ सके और पड़वाईभावसे नीचा पड़े, इस अपेक्षासे अपवादमार्ग घट जाता है, सो यह अपवादमार्ग आठमे गुणस्थानसे पड़कर सातमें, छठे गुणस्थानका जो विचार, सो अपवादमार्ग है इस रीतिसे ऋजुसूत्रनयपर पांच बोल उतारकर दिखाये।

शब्दनय।

शब्दनयसे जब क्षीण मोह बारमें गुणस्थानको प्राप्त हुये, तब एकत्व वितर्क अप्रवीचार नामा शुक्लध्यानके दूसरे पायेमें स्थिर होकर चार घनघाती कर्मोंका क्षय करते हैं यहां तक शब्दनय हुआ।

अब इस नयके ऊपर पांच बोल उतारते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है, और निर्विकल्प होकर जो अपनी आत्मामें आरूढ़ अर्थात् गुण गुणीका एक स्वरूप जानकर जय होना सो ही उपादेय है। बाकी सर्व हेय है। अब इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि चार घातिकर्मोंका क्षय किया उसको उपादेय क्यों नहीं कहा।—इस शंकाका [illegible] ऐसा है कि जब जो पुरुष अपने आत्मस्वरूपमें जय [illegible]
आपसे आप अर्थात् स्वयमेवही हो
पुरुषसे कहा कि [illegible] था
सेनेमेदी बुद्धिमा[illegible] होते
परन्तु ऐसा [illegible]

इसका मैल दूर कर लाओ। तैसेही जो पुरुष अपनी आत्मामें एकत्वभाव करके लीन है उसके कर्म स्वत ही क्षय होजायँगे, इस लिये उपादेय नहीं किन्तु हेय है। और उपादेय है सो ही उत्सर्गमार्ग है। और अपवादमार्ग इस जगह कुछ नहीं बनता इस रीतिसे शब्दनयपर पांच बोल उतारकर दिखाये।

समभिरूढनय।

इस नयसे जब घनघाति कर्मोंका क्षय किया उसी समय केवल ज्ञान, केवल दर्शन, उत्पन्न होकर लोकालोकके भूत, भविष्यत, वर्तमान कालका स्वरूप दर्शनसे देखते हैं, ज्ञानसे जानते हैं, इस रीतिसे समभिरूढनयवाला हेय मानता है।

अब इस नयके ऊपर पांच बोल उतारते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है। और लोकमें जो पदार्थ अथवा अलोकमें कोई भी पदार्थ नहीं है इन दोनोंके स्वरूपको तीनकाल अर्थात् भूत, भविष्यत, वर्तमानका एक समयमेंही देखे और जाने यही उपादेय है। बाकी सब हेय है। जो उपादेय है सोही उत्सर्गमार्ग है। और इस नयमें अपवादमार्ग कोई है नहीं, हां किंचित् इस अपेक्षासे अपवाद घट सक्ता है कि जिस समयमें ज्ञान है उस समयमें दर्शन नहीं और जिस समयमें दर्शन है उस समयमें ज्ञान नहीं। इस अपेक्षासे अपवाद बनता है, परन्तु इस ज्ञान, दर्शनमें समयका अंतर होनेमें शास्त्रोंमें टीकाकारोंके बहुत विवाद है, सो नंदीसूत्रकी टीका आदि या

अन्य ग्रन्थोंमें है सो वे ग्रन्थ मेरे पास नहीं है इस लिये मैं नहीं लिख सका, इस रीतिसे समभिरूढ़नयपर पांच बोल दिखाये।

एवंभूतनय।

इस एवंभूतनयसे जब भगवानको केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुवा, उसी समय ६४ इन्द्र आयकर चार निकायके देवताओंने मिलकर समोसरणकी रचना करी। और आठ महाप्रातिहार्य संयुक्त सिंहासनके ऊपर भगवत् विराजमान हुए, तीन छत्र सिरके ऊपर लगे हुए, इन्द्र चामर करते हुए, तीनों दिशामें तीन बिम्बा सहित प्रभु विराजमान होते हुए, और चौतीस अतिशय, पेंतीस वाणी करके संयुक्त बारह परषदाके सामने देशना देते हैं, उस समयमें एवंभूतनयवाला देव मानता है, यह एवंभूतनयसे देवका स्वरूप कहा।

अब इसमें पांच बोल उतारकर दिखाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है, और हेय इस जगह कुछ नहीं है, ऊपर लिखा हुवा समग्र स्वरूप उपादेय है और उत्सर्ग-मार्गसे तो भगवत् देशना देते हैं उस देशनाको सुनकर अपने आत्मतत्वको जाने, ग्रहण करे और जिससे अपना आत्मगुण तिरोभाव (दबाहुवा) है सो आविर्भाव (प्रगट) होय, इस रीतिसे उत्सर्ग है। और अपवादमार्ग इस जगह ऐसा है कि ज्ञानावरणीय कर्मके क्षय न होनेसे तत्वका विचार तो देशना सुनकर न हो, परन्तु जो प्रभुके समोसरण आदिककी रचना और प्रभुका

वैभव देखकर उसमें चित्तका लगाना या विचारना सो अपवाद-मार्ग है, इस रीतिसे पांच बोल एवभूतनयमें कहे।

इस प्रकार दो रीतिसे नयका स्वरूप कहकर पांचो बोल जुदी जुदी प्रक्रियासे उतारकर दिखाए।

अब तीसरी रीतिसे इनही सातों नयोंमें फिर पांच बोल उतारकर दिखाते हैं, सो इस प्रक्रियामें एक एक नयका स्वरुप और साधनरूप अपवाद और उत्सर्ग लिखकर फिर पांचों बोल उतारेंगे, परन्तु पाठकगणोंको समझनेके वास्ते जिस नयसे देवका स्वरूप लिखेंगे उस जगह शेषमें एकका अक रख देंगे, और जो अपवादमार्गसे साधन अर्थात् देवकी सेवारूप नयका वर्णन करेंगे उस जगह दोका अक रख देंगे, और जिस जगह उत्सर्गमार्ग अर्थात् देवकी सेवासे साधनरूप नयका स्वरूप लिखेंगे उसके अन्तमें तीनका अक लिख देंगे, इस जगह १, २, ३, का अक दिखलानेका अभिप्राय यह है कि अकका नाम सुनतेहीसे हेय, ज्ञेय, उपादेय, अथवा उत्सर्ग, अपवाद पाठकगण समज लेवें, क्योंकि दो दो वार लिखनेसे ग्रन्थ बढ़ जाय, दूसरा कारण यह है कि जिन जिज्ञासुओंको शुद्ध गुरुका संयोग नहीं हुवा है वे जिज्ञासु अभिप्राय न जाननेसे ऐसा कहने लगते हैं कि एक विषयको ही वारम्वार दिया है, इस सन्देहको निवृत्त करनेकेवास्ते इतना खुलाशा लिख दिया, अब नयोंका स्वरूप वर्णन करते हैं।

प्रथम नयगमनयसे देवका स्वरूप और साधनरूप

लिखत हैं कि जिस समयमें तीर्थंकर महाराजका जन्म हुआ उस समयमें सौधर्म इन्द्रने अवधिज्ञानसे भगवत्का जन्म जानके अपने देवलोकमें घंटा बजाया, इसी रीतिसे ६४ इन्द्र भगवत्का जन्म महोत्सवके वास्ते प्रभुको मेरुपर्वतके ऊपर ले जायकर महोत्सव करके अपने जन्मको सफल करते हैं, इस जगह भगवतका पूजा अतिशय प्रकट हुवा। और इस नय गमनयवाला संकल्प, आरोप और एक अश उत्पन्न होनेसे भी वस्तुको यथावत् मानता है, इसी लिये इसका नाम नयगम है, क्योंकि इसमे किसी तरहका गम नहीं है, दूसरा इसमें भूत, भविष्यत्, वर्तमान, कालसे भी कई तरहके भेदोंसे द्रव्यानुयोग के जाननेवाले गुरु यथावत् समजाय शक्ते हैं, यह प्रथम अक हुवा।

अब दूसरा अक लिखते हैं कि कोई आत्मार्थि भव्यजीव श्री अरिहंतरूप स्वजाति जो अन्य द्रव्य है उसके स्वरूपको चिन्तवन करे, अथवा चेतनाका अंश प्रभुके गुणानुयायी रूप सकल्प करे, कैसा सकल्प करे कि पहले ऐसा सकल्प कदापि न हुवा था, और यह सकल्प विषयादिसे न्यारा (अलग) होकर केवल प्रभुगुणोंमेंही लगाना, क्योंकि प्रभु निमित्त कारण हैं, इस लिये निमित्तकारणका अवलम्बन (सहारा) होनेसे अन्तरंग (दिली, भीतरी) परिणाम बढ़नेसे अर्थात् सकल्परूप होनेसें नयगमनयसे साधनरूप सेवा जानना, क्योंकि आत्मसिद्धि प्रकट करनेका कारण है, यह दूसरा अक हुवा।

अब तीसरे अर्कमें अति उत्तम साधनरूप सेवा नयगमनयसे कहते हैं कि अब आत्मामें शंकादि पांच अतिचार करके रहित क्षायिक, आत्मतत्व, निर्धाररूप शुद्ध समकितगुण प्रकटे तब आत्मसाधनका एक अंश प्रभुतारूप गुण प्रकट होनेसे आत्माका एक अंश कार्य प्रकट होता है, इस लिये नयगमनय साधनरूप भाव सेवा शुद्ध व्यवहारसे है। और इसी शुद्ध व्यवहारको उत्सर्गमार्ग भी कहते हैं। अब इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि जो गुण प्रकट हुवा है उसको साधनसेवारूप क्यों कहते हो। इसका समाधान ऐसा है कि जो तन्मय होकर रहना सोही साधनरूप सेवाका अर्थ है। क्योंकि देखो यह तन्मयताका होना अथवा जो एक अंशरूप गुण प्रकट हुवा है सो आत्माके अनंते गुणोंका साधक है, इस लिये इसको सेवा कही, क्योंकि जितना उपादानकारणसे कार्य प्रकट होय, उतना कार्य आगाडीके कार्यका साधक है, इस लिये इसको साधनरूप भाव सेवा गवेषी अर्थात् आचार्योंने देखी, यदुक्त आप्तमीमांसायां (उपादान उत्पन्नो निमित्त समवाय शुद्ध देशोचि) इस रीतिसे ग्रंथोंमें कहा है, इस लिये उपादान कारणकी जो निष्पत्ति सोही उत्कृष्ट साधन रूप सेवा जाननी, क्योंकि आत्माके अनंतागुण हैं, तिसमेंसे एक समकितरूप गुण प्रकट हुवा है, सो आत्माका एक अंश उत्पन्न हुवा। इस लिये यह नयगमनयसे उत्कृष्ट साधनरूप भाव सेवकतासे आत्मगुणकी प्रभुता प्रकट हुई, यह तीसरा अर्क पूर्ण हुवा।

अब इसमें पांच बोल उतारकर दिखलाते हैं, कि जो हमने तीनों प्रकमें स्वरूप लिखा है उसको यथावत् जानना सो तो ज्ञेय है। और इस जगह कोइ अपेक्षा न लेवें तब तो तीनों प्रकमका स्वरूप उपादेय है, हेय कुछ नहीं है। और जो साधकी अपेक्षा करे तो प्रथम प्रकमका लेख हेय जाने अर्थात् छोड़े। और दूसरे प्रकमका उपादेय अर्थात् ग्रहण करे, कदाचित् और भी विशेष शुद्ध साधनकी अपेक्षा करे तो पहला और दूसरा दोनों प्रकमोंकी लिखी हुई व्यवस्था हेय अर्थात् छोड़े। और केवल तीसरे प्रकमें जो व्यवस्था लिखी है, उसीको उपादेय अर्थात् ग्रहण करे। और उत्सर्ग मार्गसे तो जो भव्यजीव आत्मार्थि अपनी आत्माका कल्याण शीघ्र करना चाहे तो जो व्यवस्था हमने तीसरे प्रकमें लिखी है उसके अनुसार ध्यान स्थित होय अथवा वारम्वार विचाररूप मनन करे, कदाचित् इसमें चित्त वृत्ति न ठहरे तो अपवाद मार्गमें आदमने दूसरे प्रकमें निकालने की व्यवस्था लिखी है उसका वारम्वार विचारकर विषयादिसे चित्तको हटाकर प्रभुके गुणोंमें चित्तको लगावे, इस रीतिसे नयगम नयमें पांच बोल उतारकर दिखलाये

अब दूसरा सग्रह नयसे स्वरूप कहते हैं—कि जब भगवत को लोकांतिक देवता आयकर परधावे अर्थात् विन्ती करने लगें कि हे प्रभू तीर्थको प्रवर्तावो, और भव्यजीवोंको तारो, फिर भगवत् वर्षीदान देने लगे और वर्षीदान देकर फिर दीक्षाके महोत्सवमें मनुष्य और देवता सर्व इकट्ठे होकरके जहां प्रभुको

दीक्षा लेनी थी वहां जाय पहुंचे, यहां तक संग्रह नय हुवा। सो इस संग्रह नयके भी कई भेद हैं, और इस संग्रह नयमें केवल सत्ताका ग्रहण है, और एक वस्तुके कहनेसे जितने उस वस्तुके अवयव हैं उन सबको अवयवी अपनेआप ग्रहण करा देता है, इस लिए इसका नाम संग्रहनय है, यह प्रथम भंग हुआ।

अब संग्रह नयसे दूसरे भंगकी व्यवस्था कहते हैं, कि जो कोई भव्यजीव अपनी आत्माके अर्थ इस रीतिसे देवका स्वरूप विचारे कि श्री अरिहन्त देवकी उत्पन्न हुई जो असंख्यात् प्रदेशमें निरावर्णता अर्थात् आवर्णो करके रहित उस सर्व शक्तिको विलोकन करे, और अपनी निज सत्ताको भी वैसी ही विचारे, अर्थात् प्रभुकी प्रगट भई हुई निरावरण प्रभुताको और अपनी छिपी हुई सत्तागत प्रभुताका इन दोनोंका तुल्य आरोप (मिलान) करे। और जो उनकी प्रगट सत्ता और अपनी दबी हुई सत्तामें जो कुछ तुल्य आरोप न बने उस न बननेका पश्चाताप करे। और जितनेका तुल्यारोप अर्थात् परमात्म धर्म उत्पन्न हुवा होय उसका बहुमान करे, यद्यपि प्रभुसे अपना द्रव्य करके, क्षेत्र करके, काल करके, भाव करके, भेद वहतां जुदा द्रव्य है, तथापि स्वजाति सत्ता साधर्म धर्ममें अभेद है। इस रीतिसे सापेक्ष जो प्रभुका बहुमान अपनेमें तुल्यारोप, अपनी सत्ता प्रकट करनेकेवास्ते जो कोई भव्यप्राणी ऐसा विकल्प सहित चिन्तवन अर्थात् विचार करे सो संग्रह

नयसे साधनरूप अपने कल्याणका हेतु है, इस रीतिसे दूसरा भंक हुआ।

अब अत्युत्तम साधनरूप समभ्रनयसे तीसरे भंककी व्यवस्था कहते हैं, कि जिस समयमें जो कोई आत्ममुनि है सो ऐसा जानता है कि मेरी आत्मसत्ता यद्यपि आवरण करके सहित है, तथापि जो मेरी आत्माका गुण सदैव विद्यमान है अर्थात् शाश्वत है तिसका दबानेवाला को नहीं, ऐसा निरधार करके आवरणगत कर और स्वसत्तावलम्बि शुद्ध धर्ममयी हो करके उसी ही आत्मसत्तामें आपण रमणादिकसे एकत्व प्राप्त होकर जो सत्ताके सन्मुख होकरके रहे, और पहले यह जीव कदापि स्वसत्तावलम्बि नहीं हुआ था, सो अब स्वसत्ताका अवलम्बि हुआ, इस लिये इसने अपने उपादान कारणका स्मरण किया, इस लिये यह समभ्रनयसे अत्युत्तम उत्कृष्ट भाव साधनरूप नया है, यह तीसरा भंक हुआ।

अब इसमें पांच बोल उतारकर दिखाते हैं, कि जिस आत्मार्थि भव्य जीवको अपना कल्यान करनेकी इच्छा होय वह प्राणी ऊपर लिखे हुये समभ्रनयम जो तीन भंकोंमें व्यवस्था लिखी है उसको यथावत् जाने इसका नाम तो ज्ञेय है, और अपेक्षा विना तो तीनो भंकोंका लेख उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है, और साधन अपेक्षाको अंगीकार करे तो प्रथम भंक हेय अर्थात् छोड़ने योग्य है, और जो उससे भी विशेष अत्युत्तम साधन अपेक्षाको अंगी कार करे तो पहला और दूसरा

दोनों अक हेय है, और बाकी सर्व उपादेय है, उत्सर्गमार्गसे तो आत्मसिद्धरूप कार्यके वास्ते साधनरूप तीसरे अककी व्यवस्था को वारम्वार विचारे और उसीकाएकाग्र तन्मय होकर ध्यान करे। कदाचित् तीसरे अककी व्यवस्थामें चित्त न लगे तो अपवादमार्गसे उस उत्सर्गमार्गको सहाय देनेके वास्ते जो दूसरे अकमें व्यवस्था लिखी है, उसको विचारे, उसीमे वारम्वार मनन करे यह अपवादमार्ग है, इस रीतिसे सग्रहनयके स्वरूपमे पाचों बोल उतारकर दिखाये,

अब तीसरा व्यवहारनयका स्वरूप और साधनरूप सेनाका वर्णन करते हैं कि जब भगवतने आभरणादि सर्व उतारके सर्वव्रत सामायक उच्चारण किया और पचमुष्टि लोच करके अणगार अर्थात् साधुबन गये और पांच समिति, तीन गुप्ति पालते हुये देशोमे विचरने लगे, और सर्वजीवोंकी आत्माको अपनी आत्माके समान जानने लगे, और सदासर्वदा समता भावमें प्रवृत्त होने लग गये। इस जगह कोई ऐसी(शका)करे कि क्या जब सर्वव्रत सामायक नहीं उच्चारण किया था, उस समय उनका समता परिणाम न होगा,—इस सकाका (समाधान) ऐसा है कि, सत्ता और अतरग परिणामसे तो भगवत् तीन ज्ञान सहित माताके गर्भमें आते हैं तभीसे समता भाव रहता है, परन्तु प्रत्यक्ष देखनेमे जबतक गृहस्थाश्रममें रहे, तबतक माता, पिता, पुत्र, कलत्रादि सम्बन्धियोंसे, अथवा राजकाज सम्बन्धि कार्योंमे प्रवृत्त होनेसे बाह्यरूप समता परिणाम देखनेमें नहीं आता

इसलिये व्यवहारनय वाला बाह्यरूप प्रत्यक्ष देखे बिना मानता नहीं। जो गुण बाह्य देखनेमें आवे उसीको अंगीकार करे इसीलिये इसको व्यवहारनय कहते हैं। इस रीतिसे प्रथम भङ्ग हुआ।

अब दूसरे भङ्गमें साधन रूप सेवा दिखाते हैं कि—अपना क्षयोपसमसाधी जो ज्ञान, दर्शन चारित्र, वीर्य, तिसके विषय प्रीतिसहित, श्री अरिहंत देवकी शुद्धस्वरूप सम्पदा अर्थात् केवल ज्ञान, केवल दर्शनादि अनंत चतुष्टय, अथवा उपकार सम्पदा, जिससे भव्यजीवोंको देखने अथवा सुननेसे कल्याण हो सोही दिखाते हैं, कि ३४ अतिशय, ३५ वाणी, आठ महा प्रातिहार्य सम्पदा संयुक्त भव्यजीवोंके वास्ते देशना अर्थात् धर्म कथन रूप जो भगवत्का वचन सो शुद्ध उपकारीपना जाने और इसमें ही उपयोग रक्खे और तथापि श्रीप्रभूजीकी प्रभुताको भूले नहीं, और श्रीवीतरागको ही सबसे अधिक उत्कृष्ट जाने और उसीकी भक्तिमें वीर्यको जगावे अर्थात् भक्ति विषय ही अपनी शक्ति अनुसार वीर्यका उद्यम करे, तथा श्री अरिहंत देवके गुण विषय एकत्व रमण तन्मयता प्राप्त करके रहे, इस जगह जो क्षयोपसमी आत्मगुणकी प्रवृत्ति मापयादिक जो गुण सो सर्व श्री अरिहन्त भगवत परमात्माके अनुयायी करे, इस लिये इसको शुभ व्यवहार साधनरूप सेवना कहते हैं, इस रीतिसे दूसरा भङ्ग वर्णन किया।

अब तीसरे भङ्गमें अनुपचरित शुद्ध साधनरूप सेवाकी रीति

दिखाते हैं—कि जिस समयमें जो भव्यजीव अपनी आत्माके अर्थके वास्ते साधक दशामें अप्रमत्त मुनिराज सातमे गुणस्थानकी अवस्थामें प्राप्त होकर स्व स्वरूपास्वलम्बि उपादान-कारणताको अंगीकार करे और उस अवस्थामें आत्माकी परिणामवृत्ति ग्राहकता, व्यापकता, कर्त्ता, भोक्ताआदिक सर्व अपने स्व स्वरूपमें लगे, तब वो अन्तरंग वस्तुगत जो व्यवहार सो वस्तुस्वरूपमें होय, इस लिये इसको व्यवहारनयमें अत्युत्तम उत्कृष्ट साधनरूप भाव सेवा कहिये।

अब इसमें भी पांच बोल उतारकर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे तीनों भङ्गोंके स्वरूपको यथावत् जानना सा तो ज्ञेय है। और अपेक्षा विना तो इस जगह भी हेय कुछ नहीं है, किन्तु उपादेय है। और जो साधनकी अपेक्षा करे तो पहला भङ्ग हेय है, उससे भी विशेष शुद्ध साधनकी अपेक्षा करे तो दूसरा भङ्ग भी हेय है। केवल तीसरा भङ्ग उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य है, और उत्सर्गमार्गसे तो जो कोई भव्यजीव अपनी आत्माका कल्याण करनेवाला होय सो तीसरे भङ्गके लेखको वारम्वार विचाररूप मनन करे अथवा एकाग्र होकर उसीका ध्यान करे, कदाचित् ऐसा न होसके तो अपवादमार्गसे जो हमने दूसरे भङ्गमें व्यवस्था लिखी है, उस व्यवस्थाको वारम्वार विचारे अथवा ध्यान करे, इस रीतिसे व्यवहारनयमें पांच बोल उतारकर दिखाये।

अब चौथा भाव सप्तनयका स्वरूप अथवा

भाकी व्यवस्था लिखते हैं कि जब भगवान् अपनी आत्माका अंतरंग उपयोग देकर आठमें गुणस्थानमें सविकल्प पृथक्त्व सपरि विचाररूप शुक्लध्यानके प्रथम पायेमें आत्म स्वरूप विचारने लगे, उस समय ऋजु सूत्र नयवाला देव मानता है, क्योंकि इस नयवाला भूत, भविष्यत कालकी अपेक्षाको नहीं लेता है, केवल एक वर्तमान कालकी अपेक्षाको लेता है। और वक्र (टेढ़े) भावको छोड़ कर केवल सरल भावको अंगीकार करता है इस लिये इसका नाम ऋजुसूत्र नय है, यह पहला भंग हुआ।

अब दूसरे भंगकी व्यवस्था कहते हैं कि जो कोई भव्य प्राणी श्री परमात्माके अयोगी, अलेशी, अविकारी अकषाई, निरंजन, निराकार आदि गुणोंको आदर सहित अवलम्बन करके, अपना जो अंतरंग परिणाम आत्मद्रव्य क्षय उपसमी परिणति सामान्य चक्र भावरूप तन्मयम करे और कदापि न विसरे, ऐसा अवलम्बन करके साधे, वहां तक, ऋजुसूत्रनयसे साधनरूप स्मरण करे और तदुपयोगमें रहे, जहां तक शुद्ध धर्म ध्यानरूप सेवा है, क्योंकि यह आत्मसाधन रूप उत्कृष्टभाव साधनका कारण है इस रीतिसे दूसरा भंग कहा।

अब तीसरे भंगकी व्यवस्था कहते हैं कि जोकोई भव्य जीव अपना आत्माका कल्याण करने वाला अपनी आत्माको क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ करके अपनी आत्मिक शक्तिको प्रकट करे और अन्य अर्थात् दूसरेकी सहायता विगर केवल अपनी आत्मिक

शक्ति से अपने गुण जो तिरोभाव (दबेहुए) थे, उनको आविर्भाव (प्रकट) करे, उसीका नाम उत्कृष्टसाधन ऋजुसूत्र नयसे भाव सेवा है।

अब इस नयपर पांचवोल उतार कर दिखाते हैं कि ऊपर लिखे तीनों भकोंके स्वरूपका यथावत् जानना सोतो ज्ञेय है। और साधन अपेक्षाके विना हेय इस जगह भी कुछ नहीं है। किन्तु तीनोही भकोंकी व्यवस्था उपादेय है। और जो जिज्ञासु साधन अपेक्षाको अंगीकार करे तो प्रथम भक हेय है। और यदि इससे भी विशेष अति उत्तम साधन वाला जिज्ञासु अतिउत्तम साधनके वास्ते प्रथम भक और दूसरा भक दोनोंको हेय अर्थात् छोड़े, केवल तीसरे भकको उपादेय अर्थात् ग्रहण करे। और उत्सग मार्गमें तो जो अति उत्तम साधन करनेवाला जिज्ञासु है सो तीसरे भककी व्यवस्थाका ध्यान करे, अथवा वारम्वार विचार रुप मनन करे। कदाचित् इस तीसरे भकी व्यवस्थामें चित्त न ठहरे तो, अपवाद मार्गसे दूसरे भककी व्यवस्थाको वारम्वार विचार रूप मनन करे अथवा ध्यान करे। इस रीति से ऋजुसूत्रनयपर पांच बोल उतार के दिखलाये।

अब पांचमा शब्दनयका स्वरूप और साधनरुप सेवाका स्वरूप दिखलाते हैं कि जब क्षीण मोह बारमें गुणस्थानमें प्राप्त हुए तब एकत्ववितर्क अप्र विचार नामा शुक्र ध्यानके दूसरे पायेमें स्थित होकर चार घनघाति कर्मोंको क्षय करते हैं, इस रीतिसे शब्द नयवाला देव मानता है। और शब्द नयके नाम,

स्थापना, द्रव्य, भाव, यह चार भेद अर्थात् निक्षेपा हैं सोतो शब्दार्थ अपेक्षामें हैं, परन्तु शब्दनयकापर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा से कोइ भेद नहीं है, इस रीतिसे प्रथम भंक हुवा।

अब दूसरे भंककी रीति दिखाते हैं कि जो भव्य प्राणी साधन अवस्थाका अंगीकार करे यह जीव श्री वीतराग सर्वज्ञ देव प्रभू रूप शुद्धद्रव्यको अवलम्बन करके आप भाव मुनि तत्वरुचि होकर दर्शन, ज्ञान, चारित्र, यह रत्न त्रयमयी परिणामके विषय करके प्रथकत्व वितर्क सप्रविचार रुप शुक्लध्यानमें परिणामावे अर्थात् जगावे, तब यह जीव शब्द नयसे साधन रुप सेवना कर, क्योंकि ऋजुसूत्र नयमें तो प्रशस्त उद्रेक सहित अरिहंत गुणकी स्पर्शनादिक परिणाममें सहायकारी रहती है। और जहा शब्द नय होय वहा प्रशस्त अवलम्बनका कुछकाम पड़े नहीं क्योंकि साधक जो भव्य जीव सो अपने गुणमें सर्व प्रभुके गुण एकत्रित करके स्वीयरूप एकत्वता पावे और शुक्ल ध्यानकी शुद्धताको परिणमे, तब शब्दनयरूप साधन सेवना होवे, इस जगह निमित्त पूर्वक आरम्भ है, इस लिये इस व्यवस्थाके ध्यान करनेवाले जीवको साधन रूप भाव सेवना कही, अथवा साधन रूप होनेसे इसीको अपवाद मार्ग कहते हैं, इस रीतिसे दूसरा भंक हुआ।

अब तीसरे भंकका स्वरूप कहते हैं कि जो भव्यजीव आत्मार्थि जिस समय आत्मामें यथाख्यात् क्षायिक चारित्र प्रकट होय, तब जो चारित्रके सहायसे जो प्रकट हुए आत्मशक्ति,

वह आत्मशक्ति कैसी है कि शुद्ध अकषायी, असगी, निष्पीह-रूपशुद्ध, निर्मल जिससे शुद्ध धर्म हर्ष (हुलास) पावे और चारित्रकी सहायसे जो वीर्यादि, कषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया अनुयायी फिरता था सो उस कषायादि से उजड़ कर सर्व आत्मरमणमें रमणे लगा, यह धर्म जितना उल्लास पावे सो सर्व शब्दनयसे अत्युत्तम भाव सेवा रूप है। क्योंकि इस जगह दूसरेकी सहायता विना केवल अपनीही आत्मशक्तिसे स्वरूप रमणी है, इस लिये इसको अति उत्तम साधन रुप भावसेवा कही, इस रीतिसे तीसरा अक कहा।

अब इस नयमें भी पाच बोल उतार कर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको यथावत् जानना सो तो ज्ञेय है। और विना अपेक्षाके तो इस जगह हेय कुछ नहीं है। और जो जिज्ञासु साधन अपेक्षा अगीकार करे तो प्रथम अकको हेय करे। और बाकी सर्व उपादेय रक्खे। और जो इससे भी अतिउत्तम साधनेवाला जिज्ञासु होय सो दो अकोंको हेय अर्थात् छोड़े। और तीसरे अकको उपादेय अर्थात् ग्रहण करे। और उत्सर्गमार्गसे तो जो हमने तीसरे अकमें व्यवस्था कही है, उस व्यवस्थाको एकान्तमें बैठकर एकाग्रचित्तसे ध्यान करे, अथवा एकाग्रचित्तसे बारम्बार विचाररूप मनन करे, जो इसमें चित्तकी वृत्ति न ठहरे तो इस अत्युत्तम साधनका जो कारण अपवादमार्ग उस अपवादमार्गमें जो दूसरे अककी व्यवस्था है, उसका ध्यान करे, अथवा बारम्बार विचाररूप

मनन करे, इस रीतिसे शब्दनयपर चार बोल उतारकर दिखलाये।

अब छठा सम्भिरूढ़नयका स्वरूप और साधनरूप सेवा लिखते हैं-कि जब चार घनघाती कर्मोंको क्षय किया उसी समय केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न होकर लोकालोकके भूत, भविष्यत, वर्तमान कालके स्वरूपको दर्शनसे देखते हैं, ज्ञानसे जानते हैं, उस समय सम्भिरूढ़नयवाला देव मानता है, इस रीतिसे प्रथम भंग हुवा।

अब दूसरे भंगसे साधनरूप सेवा कहते हैं कि जो भव्य प्राणी साधक दशावाला जीव आठमे गुणस्थानसे दशमे गुणस्थान तक ऊपर पहुंचा और शुक्ल ध्यानके प्रथम पायेके अतमे आया, उस समय परम निर्मलमात्र हुआ,सो उस समयमें जितनी आत्मगुणकी साधना करते करते योगवीर्यकी सहायसे साधकता हुइ सो मन अपवादरूप कारण है, क्योंकि देखा शुद्ध व्यवहार विचारमेंसे तो योग धर्म आत्मको छोड़ने योग्य है, इस लिये आत्मा उसको छोड़े, परन्तु उस समयमें योग धर्म भी कारणरूप कार्यका साधनरूप होनेसे कारणिक ग्रहण किया है। परन्तु स्वस्वरूप मध्ये नहीं, जो वस्तु कारणरूप शास्त्रोंमें कहकर ग्रहण करी है सो स्वयकार्यकी सिद्धिके वास्ते है, इस रीतिसे सम्भिरूढ़नयसे साधनरूप भाव सेवना कही और दूसरा भंग पूरा हुवा।

अब तीसरे भंगकी व्यवस्था कहते हैं, कि जो भव्य जीव

इस लिये उस अतिउत्तम उत्कृष्ट साधनाका अंग पूर्ण नहीं, किन्तु शुभ साधनरूप अपवाद साधनाका अधिकार कहा है।

इस जगह कोई ऐसी (शंका) करे कि ममता करके रहित निर्मोही अवस्थाम क्या अपवाद है सो तुमने अपवादका नाम लेकर एवंभूतनय पूरा किया।

इस शंकाका (समाधान) ऐसा है कि इस जगह गुणस्थानक दूसरे पायेमें सेवाका एक आत्मधर्म रखनेका प्रयोग है, क्योंकि देखो एकतो अभी सयोगी वीर्य उदैक अनुगतका सहाय है, दूसरा श्रुत ज्ञानका अवलम्बन है, और श्रुत ज्ञान क्षयोपसमी है, यह श्रुत ज्ञान उत्कृष्ट उत्सर्ग मार्गमें मूल धात्मिक वस्तु धर्म नहीं और इस श्रुतज्ञानका अवलम्बन है, इस लिए इस निर्मोही धारमें गुणस्थानमें एवंभूतनयसे शुभ साधन कारणरूप अपवाद मार सेवना कही इसरीतिसे दूसरा अंक हुआ।

अब तीसरे अंकमें जोकि अति उत्तम साधन है जिसको जैनमतमें उत्सर्ग साधन कहते हैं उसकी व्यवस्था दिखाते हैं कि जिस समयमें जिस भव्य जीवने सर्व आत्म शक्ति प्रकट करी और चार अघाति कर्म अर्थात् वेदनी, आयु, नाम, गोत्र, कर्म जिस समय पूरे हुए उस समयमें शैलेसीकरण करके अपने आत्म प्रदेशोंका घन (समूह) करे और अयोगी केवली होय ... एवंभूतनयवाला अतिउत्तम उत्कृष्ट भावसेवना कहे।

... जगह कोई ऐसी शंका करे कि मोक्षके विषय एवंभूत ... मते तिसका सन्देह दूर करनेके वास्ते ऐसा उत्तर देना

कहते हैं कि जब भगवत्को केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुए उसी समय ६४ इन्द्र आयकर चार निकायके देवताओंने मिल कर समोसरणकी रचना करी, और आठ महाप्रातिहार्य संयुक्त सिंहासनके ऊपर भगवत् विराजमान हुए, तीन छत्र शिरके ऊपर ढले हुए, इन्द्र चामर करते हुए, तीनो ओर (तरफ) तीन बिम्ब सहित प्रभु विराजमान होते हुए, ३४ अतिशय, ३५ वाणी करके बारह परदाके सामने देशना देते हैं, उस समय एवंभूतनयवालादेव मानता है, इस रीतिसे प्रथम अङ्ग हुआ।

अब दूसरे अङ्गकी व्यवस्था कहते हैं कि जिस समयमें जो कोई भव्य जीव आत्मशक्तिके ओरसे शुक्लध्यानके दूसरे पायेमें एकत्व वितर्क अप्रविचाररूप ध्यानमें लयलीन होकर भाव मुनि पनेकी निर्विकल्प समाधिमें लगकर अपने स्वरूपका एकत्वपनेसे परिणमे, तब कारणरूप साधनाका सम्पूर्ण अङ्ग पूरा होगया। इस लिये इसको एवंभूतनयसे साधनरूप भाव सेवना कही।

अब इस जगह कोई ऐसी शङ्का) करे कि तुमने क्षीण मोह बारमे गुणस्थानकमें एवंभूतनय पूरा कर दिया, परन्तु साधना तो अयोगी गुणस्थान तक है।

इस शङ्काका (समाधान) ऐसा है कि हमने बारमें गुणठाणेमें एवंभूतनयसे जो साधना पूरी करी, इसका अभिप्राय यह है कि कारणरूप साधनाका अङ्ग पूरा किया। और इसी साधनाको अपवाद भी कहते हैं। और जो अयोगी गुणस्थान तक साधना है सो अतिउत्तम शुद्ध व्यवहारसे उत्कृष्ट कार्यरूप साधना है,

द्वादमार्गरूप जो सिद्धान्त है सो सर्वकार्य अपेक्षासे ही सिद्ध करता है, क्योंकि बिना अपेक्षाके व्यवहार नहीं और व्यवहारके विना कार्य सिद्ध होवे नहीं, और व्योहार है सो सापेक्ष है विना अपेक्षाके व्यवहार झूठा है, क्योंकि देखो श्रीआनन्दघनजी १४म श्रीअनन्तनाथ जीके स्तवनकी चौथी गाथामें ऐसा कहते हैं,

वचन निरपेक्ष व्योहार झूठो वचन सापेक्ष व्योहार साचो। वचन निरपेक्ष व्यवहार संसार फल साभली आदरी काय-राचो ॥ ४ ॥

इसलिये हे भोले भाई—जिन्होंने वीतराग सर्वज्ञ देवका स्याद्वाद मत अंगीकार किया है, और गुरुकुल वास आत्मअनु भवके जानने वाले, शुद्ध स्वरूप अपेक्षाके विना कोई वचन न निकाले, हा दुःख दु खगर्भित मोहगर्भित वैराग्यमें जिन्होंने जिन लिङ्ग (वेश)को लेकर अपनी आत्माको पंडित (गीतार्थ) दिखलाने के वास्ते, वस्तुगत धर्म अथवा कर्ताका अभिप्राय जाने विना निरपेक्ष वचन निकालते हैं सो वे जिनाज्ञाके विराधक हैं, केवल इस भवमें मूरखमण्डलीके उपदेश दाता बनकर दुर्गतिको प्राप्त होंगे। इसलिये विना अपेक्षाके जो वचन कहना सो वीतरागकी आज्ञासे बाहर है, इसलिये मैंने भी अपेक्षा लेकर वर्णन किया है।

और जो तुमने कहा कि सब जगह तीनों अकउपादेय कहे उसका प्रयोजन ऐसा है कि-प्रथम अकमें तो केवल देवका स्वरूप है, और देवकी साधन अवस्थाका कथन है, सो जब तक

कि, भोदेवानुप्रिय शुद्ध आत्मा तो सिद्ध है, सो सिद्ध परमात्माको तो कोई नवीन कार्य करना है नहीं। और अयोगी केवलीके तो सिद्धरूप कार्य करना है, इस लिए जितना कार्य अधूरा है, उतनेही कार्यकी सिद्धिके वास्ते जो साधन है सो ही शुद्ध सेवा है, इस लिए साधनाका अंक उत्कृष्ट रीतिसे अयोगी केवली गुणस्थानमें पूर्ण हुआ, इस लिए अति उत्तम शुद्ध साधनका अंग अयोगी गुणस्थानतक एवंभूतनयकी व्यवस्था तीसरे अंकमें कही।

अब इस एवंभूतनयपर पावबोल उतार कर दिखाते हैं कि ऊपर लिखे हुए तीनों अंकोंके स्वरूपको यथावत् जाने सोतो ज्ञेय है। और बिना अपेक्षाके ऊपर लिखी व्यवस्थामें हेय कुछ है नहीं, केवल तीनों अंक उपादेय है। औरजो साधनकी अपेक्षाको अंगीकारकर तो प्रथम अंक हेय है, दूसरा तीसरा उपादेय है। और जो निराजम्य होकर साधनकी अपेक्षा करे तो पहला और दूसरा दोनों अंक हेय अर्थात् छोड़ने योग्य है, केवल तीसरा अंकही उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है, इसरीतिसे इस जगह ज्ञेय, हेय, उपादेय जानो।

(प्रश्न) आपने जो सातों नयका वर्णन किया उनमे विना अपेक्षाके तीनों अंकोंको उपादेय बताये और हेय न कहा, और अपेक्षासे हेय बतलाये सो अपेक्षासे हेय कहनेका प्रयोजन क्या है उसको समझाइये,

(उत्तर) भो देवानुप्रिय इस वीतराग देवका जो स्या

निमित्तकारण होकर मेरेको तारने वाला हैं, परन्तु प्रधान कारण मेरी आत्मा है। इस विचारमें जब दृढ हुआ, तब प्रभुके गुणोंकी और अपने गुणोंकी प्रथम एकताका विचार किया कि प्रभुके गुण आविर्भाव हैं, और मेरे गुण तिरोभाव है, परन्तु हैं बराबर, ऐसातुल्यारोप करनेसे प्रथम अकमें जो देवका स्वरूप कहा था सो हेय हुआ, क्योंकि देखो जो प्रथम ही उसको उपादेय न करते और हेय करदेते तो अपने गुण साधनेका विचार कदापि न होता। इसलिये प्रथम उसदेवके साधन सहित गुणको अंगीकार किया तो अपने गुण साधनेकी इच्छा हुई, तो प्रभुके साधन रूपको छोड़नेकी इच्छा स्वतः ही बन गई। इस रीतिसे प्रथम तीनों अंकोंको उपादेय कहा, जब साधनकी अपेक्षा हुई तब प्रथम अंक हेय कर दिया, इस रीतिसे जो साधन अवस्था करने से जो आत्माके गुण तिरोभाव थे सो प्रकट होनेसे उस साधन अवस्थाको भी हेय कर दिया, क्योंकि दूसरेका सहारा तभी तक है जब तक कि अपनेमें पूरा बल (शक्ति) न हो। जिसमें अपनी शक्ति है वह दूसरेसे सहारा नहीं लेता। इस रीतिसे कार्य कारणकी व्यवस्था जानो, तथा हेय, उपादेयकी व्यवस्था जानो, कि प्रथम तो उसको उपादेय करते हैं, और पीछे फिर हेय कर देते हैं, सो इसका दृष्टान्त देकर फिर द्राष्टान्तको समझाते हैं, कि—

जैसे किसान लोग कृषि (खेती) करने वाले पुरुष जब, चणा आदि धान पैदा होता है उस समय खालजा (भूसा) घास सहित सबको इकट्ठा करते हैं, कदाचित् वे लोग केवल धानको

हम उसद्रूपको उपादेय अर्थात् ग्रहण न करेंगे, तबतक किसी जीवका कार्य सिद्ध न होगा, सो ही दिखाते हैं कि जो जीव अपनी आत्माका कल्याण करना चाहता है वो जीव प्रथम देवके स्वरूपको ग्रहण करे, और ऐसा विचारे कि-यह वीतराग तरण तारण, भय दु:ख निवारण, दीनदयाल, कृपानिधि, निष्कारण उपकारी, मेरेको तारेगा। इस हेतुसे प्रथम उसको उपादेय किये विना उसके गुणोंकी पहचान क्योंकर हो सके, और गुणोंकि विना उसकी भी परीक्षा न हो, इस लिये प्रथम देवको उपादेय करके उसके गुणोंको जाने। जब गुणोंको जानेगा तो आत्मार्थि भव्यजीव विचार करेगा कि जिसमें ऐसे गुण हैं वो कौनसी वस्तु है, मेरा सजाति है, या विजाति है। विजाति तो उसके विचारमें ठहरे नहीं, जब स्वजाति ठहरा, तो विचार हुवा कि मैं द्रव्य करके तो एक हु, परन्तु इसके सर्व गुण प्रकट हैं और यह इस प्रभुताको प्राप्त हुवा, और मैं ऐसाही बना रहा तो इसका कारण क्या है। उस कारणका विचारने लगा तो ऐसा निश्चय हुवा कि इसके गुण तो आविर्भाव अर्थात् प्रकट हो गये हैं, और मेरे गुण तिरोभाव अर्थात् दबे हुये हैं, सो मेरे छिपे हुये गुणोंकी पहचान कराने वाले इस वीतराग परमात्माके प्रकट गुण हैं, इस लिये यह वीतराग अर्हंतदेव मेरे गुणोंको जनानेमे निमित्त हुवा। अब जिस रीतिसे इन्होंने साधन करके अपने गुण प्रकट किये हैं, उसी रीतिसे मै भी साधन करु। इस साधनकी अपेक्षा होनेसे ऐसा विचार हुवा कि यह वीतराग सर्वज्ञदेव

निमित्तकारण होकर मेरेको तारने वाला है, परन्तु उपादान कारण मेरी आत्मा है। इस विचारमें जब दृढ हुवा, तब प्रभुके गुणोंकी और अपने गुणोंकी प्रथम एकताका विचार किया कि प्रभुके गुण आविर्भाव हैं, और मेरे गुण तिरोभाव हैं, परन्तु हैं बराबर, ऐसातुल्यारोप करनेसे प्रथम अकमे जो देवका स्वरूप कहा था सो हेय हुवा, क्योंकि देखो जो प्रथम ही उसको उपादेय न करते और हेय करदेते तो अपने गुण साधनेका विचार कदापि न होता। इसलिये प्रथम उसदेवके साधन सहित गुणको अगी कार किया सो अपने गुण साधनेकी इच्छा हुई, तो प्रभुके साधन रूपको छोड़नेकी इच्छा स्वय ही बन गई। इस रीतिसे प्रथम तीनों अकोको उपादेय कहा, जब साधनकी अपेक्षा हुई तब प्रथम अक हेय कर दिया, इस रीतिसे जो साधन अवस्था करने से जो आत्माके गुण तिरोभाव थे सो प्रकट होनेसे उस साधन अवस्थाको भी हेय कर दिया, क्योंकि दूसरेका सहारा तभी तक है जब तक कि अपनेमें पूरा बल (शक्ति) न हो। जिसमें अपनी शक्ति है वह दूसरेसे सहारा नहीं लेता। इस रीतिसे कार्य कारणकी व्यवस्था जानो, तथा हेय, उपादेयकी व्यवस्था जानो, कि प्रथम तो उसको उपादेय करते हैं, और पीछे फिर हेय कर देते हैं, सो इसका दृष्टान्त देकर फिर दार्ष्टान्तको समझाते हैं, कि—

जैसे किसान लोग कृषि (खेती) करने वाले पुरुष जब, चणा आदि धान पैदा होता है उस समय खालला (भूसा) वृक्ष सहित सबको इकट्ठा करते हैं, कदाचित् वे लोग केवल धानको

इकट्ठे कर सक्ता है, परन्तु जब, गेहूं, बाजरी, जवार, चावल मूग, उड़द आदिक धानकोतो विना घास फुस दरख्तके कदापि इकट्ठा नहीं कर शक्ता। इस लिये तेरी शुष्क तर्क आत्माके अकल्याण कारी दृष्टान्तके अभिप्रायको विना समझे उन्मत्तके वचन जैसी हुई। सो अब इस अज्ञान दशाको छोड़कर सद्गुरुके वचनको समझ कर हमने जो दृष्टान्त दिया है उसके एक अंशको लेकर सन्देहको दूरकर, ऊपर लिखे हुए लेखको समझो और दृष्टान्त से दृष्टान्तको मिलाओ, मिथ्यात्वको गमाओ, सद्गुरुओंके वचन हृदयमें जमाओ, नाहक तर्क क्यों उठाओ, मूर्खाई क्यों दिखाओ। इस अभिप्रायसे हमने प्रथम तीनों अकको को उपादेय कहा, फिर [illegible] अपेक्षासे प्रथम अकको हेय कहा, और दूसरे तीसरे अंक को उपादेय कहा, फिर जब आत्मशक्ति बढ़ी और गुण प्रकट हुए तब दूसरे अक का भी हेय कर दिया, केवल तृतीय अंक उपादेय रहा, जब अत्युत्तम उत्कृष्ट शुद्धसाधन हो चुका, तब तृतीय अक भी शेषम हेय होकर केवल आत्मस्वरूप रहा। इस हमारे तात्पर्यको समझो, मिथ्या विकल्पोंको वारो, जिसने सन्सारमें न उलझो, केवल आत्मगुणमें हा रमो। इस रीतिसे हेय ज्ञेय उपादेय का स्वरूप दिखलाया।

अब उत्सर्ग मार्गसे तो तृतीय अंककी व्यवस्था है [illegible] तय होकर मोक्षमें प्राप्त हो जाय, [illegible] अत्यु, [illegible] क्षमादि शुद्ध [illegible], दूसरे अंक जैसी हुई [illegible]

जीव दृढ होकर अपने आत्म विचारमे रहता है, यह अपवाद मार्ग हुआ।

इस रीतिसे पंच भूतनयमें पाचबोल उतार कर दिखलाये, और सातों नयका स्वरूप तथा तीन रीतिसे पाच पाच बोल उतार कर दिखलाये। इस स्याद्वादके मजे कोई विरले ही लोगोंने पाये, मिथ्या जैनी कहाय फिर अज्ञान बीच छाये, स्याद्वादका नाम ले भोले जीवोंको बहकाये, राग द्वेष और वीतराग मार्गमे कहाये, नाम धरनेसे हुआ क्या जन्म मरणको बढ़ाए, और नामको धराय जैन धर्मको न पाए, आडम्बर दिखाय लोगोंको अपने जालमें फसाये, वीतरागका धर्म कहे फिर राग द्वेषको बढ़ाये, आप लड़े और लोगोंको लड़ाये लोगोंको उपदेश देय आप समताको न लाये, कपट क्रियाको दिखाय फिर उत्कृष्टकहाये, पोथोंके भार गधा जैसे उठये, बांचे सब ग्रन्थ तो भी ज्ञानको न पाये, वर्तमानका हाल किंचित् यह जताये। इस रीतिसे सात नय पूर्ण किये।

अब सप्तभङ्गीका स्वरूप और पाचबोल उतार कर दिखाते हैं, सो प्रथमतो इस सप्त भगीका समझना और धराना कठिन है, तैसेही गुरुकुलवास विना बोलोंका समझना कठिन है, सो प्रथतो साता भागोंमें पाच बोल शामिल उतारते हैं। कि-इन सातोभागोंके स्वरूपको जानना सोतो ज्ञेय है, और विकलादेशी भागोंका स्वरूप हेय है, और सकलादेशी भांगोंका स्वरूप उपादेय है, और जो उपादेय है सोही उत्सर्गमार्ग है, और

सातों भागोंके स्वरूपको ग्रहण करे सो अपवाद मार्ग है, इस रीतिसे सातोंभांगोंमें पाच बोल दिखाये ।

अब दूसरी रीतिसे पाचबोल उतारनेके वास्ते प्रथम सप्त भन्गीका स्वरूप कहते हैं सो प्रथम "स्यात्" शब्दका अर्थ करते हैं, कि स्यात् अव्यय है, अव्ययके अनेक अर्थ होते हैं, यदिउक्त, "धातुनां अव्ययानामनेकार्था-निवोध्यानि" इसवास्ते स्यात् पद दिया जाता है ।

५१ प्रथम भागा कहते हैं, कि "स्याद्देवअस्ति" स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, करके देव अस्ति है, यह प्रथम भागा हुआ ।

५२ दूसरा भांगा स्यात् देवनास्ति" देव जो है सो स्यात् नहीं है, किसकरके कि कुदेव करके, सो कुदेवका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करके नास्ति है, जो कुदेव करके देवमे नास्तिपना नहीं माने तो हमारा कार्य ही सिद्ध नहीं होय, क्योंकि कुदेवमें तो कुगति देनेका स्वभाव है, और देवमें देवगति अर्थात् मोक्ष ही देनेका स्वभाव है । जो देवमें, कुदेवका नास्ति स्वभाव न होता तो हमारा मोक्ष साधन निमित्तकारण कदापि नहीं बनता, इस वास्ते "स्याद्देव नास्ति" यह दूसरा भागा हुआ ।

५३ तीसरा भागा "स्याद्देव अस्ति नास्ति" का स्वरूप कहते हैं, कि जिस समयमे देवमें देवत्वपनेका अस्तित्व है, उसी समयमें देवमें कुदेवपनेका नास्तित्व है, सो यह दोनो धर्म एक समयमें विद्यमान है, यह तीसरा भागा हुआ ।

'स्यात्नास्ति' यह दो शब्द हैं और इन दोनों ही शब्दोंका अर्थ हैं, जो इसमेंसे कोई अपेक्षा लेकर हेय करे तो उस हेयका केवल जानना मात्र होगा, परन्तु लिखनेमें या कहनेमें नहीं आय सका, क्योंकि प्रथम तो यह सात भागेही समझ कर प्रतिपादन करना और जिज्ञासुओंको समझाना बहुत कठिन हैं, क्योंकि देखो शास्त्रकार ऐसा कहते हैं कि नय आदिका समझना और घटाना सब पदार्थोंमें होता है परन्तु सिद्धोंमें नय नहीं घटता है। और सप्तभंगी सिद्धमें भी घटती है अथवा नय आदि द्रव्योंमें घटती है, परन्तु गुणपर्यायमें नहीं घटती, और सप्तभंगी द्रव्यमें गुणमें वा पर्यायमें सर्वत्र घटती है। इसलिये इस स्याद्वाद रहस्यके जानने वाले आत्मानुभवके रसिया सूक्ष्म विचारसे अपेक्षा सहित हेयको समझलेना, परन्तु लिखनेके वास्ते हेय कुछ है नहीं, दोनोंका उपादेय है, और उत्सर्ग मार्गकरके तो स्यात् पदको अपने चित्तमें विचारना कि इस जगह कर्त्ताने स्यात् पद किसवास्ते दिया है, और किस किस धर्मका यह स्यात्पद उद्योत (प्रकाश) करताहै, अस्ति धर्मको स्यात् पद कहने वाला है कि नास्ति धर्मको स्यात् पद कहने वाला है जनाने वाला हैं, इस रीतिका जो विचार और अपवाद मार्ग भी इस जगह है तो नहीं, जिज्ञासुके वास्ते ऐसा कह सके है कि स्व यथावत् न आवे और भांगोंको याद करे वो इस रीतिसे सप्त भंगीमें पांच बोल उतार कर

द्रव्य अनुभवरत्नाकर बिना।॥१

सजिल्द ३)

अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश छपरहा है ३)

सजिल्द ३॥)

दर्शन, पूजन, सामयिक नित्य विधि ।=)

खरतर गच्छ पञ्चप्रतिक्रमण अर्थ सहित

छपेगा सजिल्द ३)

स्याद्वादानुभवरत्नाकर बिनाजिल्द १॥)

मिलनेका पता—

जैन श्वेताम्बर मित्र मण्डल

२१ केनिङ्ग स्ट्रीट कलकत्ता

श्रीमद् अभयदेव सूरि ग्रन्थमाला

रांगड़ी बड़ा उपसार बीकानेर ।

श्रीआत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचारक मण्डल

रोशन मोहोला आगरा ।

चौपाई।

सदा रहो यह ग्रन्थ प्रवीना, भविक कमल सुख आतम चीन
उत्तम ग्र'थ इसे जो पढ़े, भव सागरमे कभी न पड़े ॥१॥
जो यह ग्रन्थ पढेमन लाई, मिथ्या माह दूर होय भाइ।
ज'म मरण सब दु ख मिटि जाइ, आतम गुण नित होय सवाई

दोहा।

उत्तम ग्रथ यह खोल है छण छण करो विचार।
गया काल आवे नहीं अनुभव दव विचार ॥१॥
चिदानन्द रचना करी अनुभव देव विचार।
करे मनन इस ग्रन्थका आतम रूप निहार ॥२॥
करे ग्र'थ अभ्यास तो कटे सभी जन्जाल।
चिदानन्द यों कहत है भविजन होय निहाल ॥३॥

दोहा।

श्री चिदानन्द महाराजने रचना करी विशाल।
कान्यकुब्ज काली चरण लिखा ग्र'थ तत्काल ॥
ग्राम पर्देश्वर धाम है तहसीली है वाह।
जिला आगरा जानियो मेरा यहां निर्वाह ॥
इति श्रीमद् जेनधर्म्माचार्य परम खामी श्री १०८ चिदानन्द
ामि विरचिते शुद्धदेव अनुभव विचार

समाप्ति।

द्रव्य अनुभवरत्नाकर [illegible]

सजिल्द ३)

अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश छपरहा है ३)

सजिल्द ३॥)

दर्शन, पूजन, सामयिक नित्य विधि ।=)

खरतर गच्छ पञ्चप्रतिक्रमण अर्थ सहित

छपेगा सजिल्द ३)

स्याद्वादानुभवरत्नाकर विनाजिल्द १॥)

— मिलनेका पता—

जैन श्वेताम्बर मित्र मण्डल

२१ केनिङ्ग स्ट्रीट कलकत्ता

श्रीमद् अभयदेव सूरि ग्रन्थमाला

रांघड़ी बड़ा उपसार बीकानेर ।

श्रीआत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचारक मण्डल

रोशन मोहोला आगरा ।

चौपाई ।

सदा रहो यह ग्रन्थ प्रवीना, भविक कमल सुख आतम लीना ।
उत्तम ग्रन्थ इसे जो पढ़े, भव सागरमें कभी न पड़े ॥१॥
जो यह ग्रन्थ पढ़ेमन लाई, मिथ्या मोह दूर होय भाई ।
जन्म मरण सब दुःख मिटि जाई, आतम गुण नित होय सवाई ॥२॥

दोहा ।

उत्तम अब यह सीख है क्षण क्षण करो विचार ।
गया काल आवे नहीं अनुभव देव विचार ॥१॥
चिदानन्द रचना करी अनुभव देव विचार ।
करे मनन इस ग्रन्थका आतम रूप निहार ॥२॥
करे ग्रन्थ अभ्यास तो कटे सबी जन्जाल ।
चिदानन्द यों कहत हैं भविजन होव निहाल ॥३॥

दोहा ।

श्री चिदानन्द महाराजने रचना करी विशाल ।
कान्यकुब्ज काली चरण लिखा ग्रन्थ तत्काल ॥
ग्राम बटेश्वर धाम है तहसीली है बाह ।
जिला आगरा जानिया मेरा यहां निर्वाह ॥

इति श्रीमद् जैनधर्माचार्य परम योगी श्री १०८ चिदानन्द स्वामि विरचिते शुद्धदेव अनुभव विचार

समाप्ति ।

द्रव्य अनुभवरत्नाकर ̃ ावना।।(

सजिल्द ३)

अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश छपरहा है ३)

सजिल्द ३॥)

दर्शन, पूजन, सामयिक नित्य विधि ।=)

खरतर गच्छ पञ्चप्रतिक्रमण अर्थ सहित

छपेगा सजिल्द ३)

स्याद्वादानुभवरत्नाकर विनाजिल्द १॥)

मिलनेका पता—

जैन श्वेताम्बर मित्र मण्डल

२१ केनिङ्ग स्ट्रीट कलकत्ता

श्रीमद् मभबदेव सूरि ग्रन्थमाला

रांघड़ी बड़ा उपसार बीकानेर।

श्रीआत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचारक मण्डल

रोशन मोहल्ला आगरा।

पुस्तक मिलनेका पता-

१ बाबू शालमचन्दजी गोलछा

१६६ कमरशियल स्ट्रीट

बंगलोर कन्टोमेन्ट

Address —

Babu Shalam Chandaji Golchha

166 Commercial Street Bangalore Cantonment.

२ जैन श्वेताम्बर मित्रमंडल

२१ कनिंग स्ट्रीट, कलकत्ता।

Printed by
H C Mitra at the Visvakosha Press
9 Visvakosha Lane, Baghbazar,
CALCUTTA
1921